चार मित्रों की बातें

(आर्य समाज एक सरल परिचय)

— आचार्य प्रेमभिक्षु वानप्रस्थ

ओ३म्

आर्यसमाज : एक सरल परिचय

सुरेश– मित्रवर रमेश ! मैं कितनी ही बार तुमसे आर्यसमाज के साप्ताहिक सत्सङ्ग में पहुँचने का आग्रह कर चुका हूँ। पर कल भी विवार के सत्सङ्ग में तुम पहुँचे नहीं। आखिर बात क्या है ?

मत-पन्थों से नई पीढ़ी को घृणा क्यों ?

रमेश—मित्र सुरेश ! मैं नहीं चाहता था, पर आज तुमको पने मन की बात ही दूँ। प्रिय मित्र, तुम विज्ञान के विद्यार्थी ो, एम० एस सी० फाइनल में पढ़ते हो। तुम यह तो अच्छी तरह ानने ही हो कि विविध मत पन्थों में न जाने कितनी बातें विज्ञान ुद्धि और सृष्टि नियम के विरुद्ध हैं जो अन्ध विश्वास और अन्ध श्रद्धा श जारी हैं। और भाई, तुम यह जानते हो कि मैं इतिहास का द्यार्थी हूँ। मुझे विदित है कि मत-मजहब और धर्म के नाम पर लने वाले इन एक दो नहीं, सैकड़ों पन्थों ने मानव समाज के े-टुकड़े करके आपस में किस बुरी तरह से लड़ाया है। मजहब के ाने पन ने मानव-मानव के बीच भेदभाव, ऊँच-नीच और अपने ाये की जो अमिट दीवारें खड़ी कर दी हैं, उससे मानवता कराह है। मित्र! क्या तुमने मतान्धता के शिकार हैवान बने हुए इन्सान अपनी खूनी तलवार से दूसरे इन्सानों के खून से इतिहास के पन्नों गने की दर्द भरी कहानियाँ नहीं सुनी हैं ? एक हाथ में कुरान ूसरे में तलवार लेकर मुसलमान बादशाहों ने भारत और दूसरे

देशों में जुल्मों का जो कहर ढायाहैं, उसे तो तुम जानते ही हो। योरुप में ईसाइयों के ही दो फिरकोंने किस तरह एक दूसरे को मिटाने की कोशिशें की हैं, वे जुल्मों की कहानियाँ भी कम दर्दनाक नहीं हैं। मेरे प्यारे मित्र, मतान्ध पोपों द्वारा जिस समय बाइबिल की विज्ञान विरोधी मान्यताओं का खण्डन करने पर गैलिलियो, ब्रूनो आदि न जाने कितने मानवता के सपूतों को जीवित ही तैल के कड़ाहों में भून दिया गया, उसकी याद में आज भी माँ मानवता नौ-नौ आँसू रोती है। और दूर क्यों जाते हो सुरेश जी ! हिन्दुओं के भी विभिन्न मत मतान्तरों–शैव, शाक्त और वैष्णवों ने एक दूसरे पर घोर अत्याचार किये हैं। बौद्धों और जैनों की भी यही कहानी है। बौद्धों ने मतान्धता की शराब पीकर हमारे देश को गुलाम ही बना डाला। वैष्णवों और जैनों के विरोध और मतान्धता का एक ज्वलन्त उदाहरण देखो—

'हस्तिना ताड्यमानोऽपि न गच्छेज्जैन मन्दिरम्।'

चाहे (पागल) हाथी मारने को क्यों न दौड़ा आता हो और रास्ते में जैन मन्दिर में जाने से प्राण बचता हो तो भी जैन मन्दिर में प्रवेश न करे।

वैष्णवों और शैवों का विरोध तो कभी बड़ा प्रसिद्ध रहा है। यहाँ तक कि उन दोनों के अपने २ समर्थक पुराणों में भी यह विरोध बड़ा स्पष्ट है।

इतना ही नहीं मतवाद के नाम पर स्त्री जाति का विद्या पढ़ने का अधिकार छीन लेना और अपने ही एक अङ्ग को अछूत कहकर एक मनुष्य की छाया भी दूसरे मनुष्य पर पड़ जाने को घोर पाप बताना—क्या यह सब इन्सानियत की खुली हत्या नहीं है। एक बात और कह दूँ कि मैं तो व्यवहार में भी यह देखता हूँ कि धर्म-धर्म ईश्वर-ईश्वर की पुकार मचाने वाले, अखण्ड कीर्तनों की धूम मचाने वाले लोग दूसरे लोगों से भी अधिक पापी, अधिक चरित्रहीन, अधिक,

रिश्वतखोर, और भ्रष्टाचारी, दुराचारी, निकम्मे और हरामखोर देखे जाते हैं।

इसलिए प्यारे मित्र ! तुम्हारे आग्रह को देख मुझे आज खुलना पड़ा है। तुमको शायद दुःख हो, इसलिए मैं यह सब कहना नहीं चाहता था। सच बात तो यह है मित्र, मुझे तो तमाम मत पन्थों से बड़ी नफरत हो गई है।

(सुरेश ने बड़े स्नेह से रमेश का हाथ अपने हाथ में लेते हुये और मुस्कराते हुए कहा—)

मानवता ही धर्म : सच्चा मानव ही आर्य

सुरेश—भाई रमेश जी, मैं तुम्हारे विचारों को जानता हूँ और तुम्हारे मन के दर्द को पहिचानता हूँ। मुझे विदित है कि किसी दीन-दुःखी का दुःख देखकर तुम्हारा हृदय भर आता है। किसी दुःखी की सेवा करने में, किसी जरूरतमन्द की मदद करने में तुमको कितना आनन्द आता है, मुझसे यह छिपा हुआ नहीं है। धर्म और विज्ञान का विरोध, ज्ञान और कर्म का विरोध तुमको असह्य है यह भी मुझे विदित है। मित्रवर ! यही कारण है कि 'आर्य समाज' में आने के लिये मैं तुमसे इतना अधिक आग्रह करता रहा हूँ। तुम्हारे जैसे आचार विचार और व्यवहार रखने वाले व्यक्ति का नाम ही तो आर्य है–भले ही वह दुनियाँ के किसी भी देश, किसी भी वर्ग और किसी भी काल-खण्ड में पैदा हुआ हो। बिना किसी वर्गभेद, रङ्गभेद और देश-भेद के संसार का हर श्रेष्ठ, सदाचारी और मानवता का उपासक मनुष्य 'आर्य' है। और ऐसे ही श्रेष्ठ आचरण वाले मानव-सङ्गठन का नाम है 'आर्यसमाज' प्यारे। मित्र ! आर्यसमाज के निकट किन्हीं सीमाओं में बन्धा हुआ नहीं, किन्तु विश्व मानव, नहीं नहीं प्राणिमात्र को प्यार करने वाला मनुष्य ही धर्मात्मा है और मानवता की सेवा या विविध कर्तव्य कर्मों का पालन ही धर्म है।

प्रिय मित्र ! मत पन्थों के नाम पर इतने ही क्यों, न जाने

कितने-कितने पाप-पाखण्ड जारी हैं, तुमको—एक सच्चे इन्सान को—उनसे घोर घृणा होनी ही चाहिये। काश, कि तुम यह जान सको कि आर्य समाज इस प्रकार का कोई मत-मजहब या पन्थ नहीं है।

रमेश—(आश्चर्य से) क्या आर्य समाज स्वामी दयानन्द द्वारा स्थापित एक नया पन्थ नहीं है !

सुरेश—नहीं नहीं, कदापि नहीं। मित्रवर ! मैं जानता हूँ कि इसी भ्रम के कारण ही तो तुम्हारे जैसे मानवता के पुजारी आर्य-समाज के पावन अंचल से अभी तक दूर हैं। पर मेरे बन्धु जिस तरह से मेरे कमरे के भीतर क्या कुछ है—कितनी चारपाइयाँ कितनी कुर्सी, कितनी आलमारी, कितनी मेज कितनी खूंटियाँ और कितनी पुस्तकें तथा अन्य वस्तुयें हैं—यह सब ठीक-ठीक जानने के लिये तुम्हें मेरे कमरे के भीतर पहुँचना होगा। उसके बिना जो भी राय तुम प्रकट करोगे, अन्दाजया होगो। उसी तरह आर्यसमाज को सही रूप से समझने के लिए तुमको उसके निकट पहुँचना होगा। उसके सत् साहित्य को पढ़ना होगा और विचारों को जानना होगा। और तब तुमको यह जानकर निश्चय ही भारी प्रसन्नता होगी कि आर्य समाज कोई नया मत पन्थ नहीं।

रमेश—मित्रवर, पर संक्षेप में क्या मुझे आप यह बता सकेंगे कि आर्य समाज यदि मत पन्थ नहीं है तो फिर है क्या ?

सुरेश हाँ, क्यों नहीं। देखिये एक शब्द में कहें तो आर्य समाज मानव निर्माण आन्दोलन (चरित्र निर्माण आन्दोलन) या सत्य सनातन वैदिक धर्म का प्रचारक संघ है।

रमेश—वाह मित्र ! बात तो वही हुई। आर्य समाज धर्म और मत-मजहब की बीमारी से अलग कहाँ हुआ ! आर्य समाज वैदिक धर्म का प्रचारक है, कैथोलिक ईसाई धर्म के प्रचारक है, मुसलमान मुहम्मदी धर्म के प्रचारक हैं। अभी तो आप कह रहे थे कि आर्यसमाज ऐसी किन्हीं सीमाओं से बँधा हुआ नहीं है। फर्क क्या हुआ इसमें ?

धर्म और महजब पर्यायवाची नहीं

सुरेश—प्रियवर ! तुम भूल रहे हो। तुम धर्म और मजहब का अर्थ एक ही समझ रहे हो।

रमेश—मैं क्या अधिकतर लोग ऐसा ही समझते हैं।

सुरेश—पर यह सत्य नहीं है, मित्रवर ! मजहब का अर्थ मत-पन्थ या सम्प्रदाय तो हो सकता है, धर्म नहीं।

रमेश– तब क्या धर्म और मत दो अलग-अलग चीजें हैं ? इनमें क्या अन्तर है, सुरेश जी ?

सुरेश–मित्रवर, बहुत संक्षेप में कहूँगा। अच्छा, पहले तुम यह बताओ कि ईश्वर की सत्ता को तो तुम मानते हो ?

पुनर्जन्म द्वारा ईश्वर सिद्धि

रमेश—हाँ, मित्र ! पहले तो लगभग नहीं ही मानता था, कुछ ठीक निश्चय न था, परन्तु पुनर्जन्म की कई प्रत्यक्ष घटनायें अखबारों में पढ़ने को मिलीं। उनमें से एक-दो की जब मैंने खुद जाँच की और उन्हें सत्य पाया तो न सिर्फ ईश्वर की सत्ता में, अपितु जीवात्मा और प्रकृति की पृथक् २ सत्ता में भी मेरा पूरा-पूरा विश्वास हो गया है। पुनर्जन्म की इन घटनाओं ने सबसे पहले आत्मा (जीवात्मा) के अस्तित्व और साथ ही साथ जीवात्माओं की अनेकता का विश्वास मुझे कराया जीवात्मा हैं, वे अनेक हैं और कर्मफल के आधीन अनेक जन्म धारण करते हैं। तब इनको अपनी अटल व्यवस्था के आधीन कर्मफल देने वाली कोई महती चेतन, अदृश्य और सर्वशक्तिमान् सत्ता अवश्य है, उसी का नाम ईश्वर है। फिर जब भोक्ता है, तो भोग्य भी स्वाभाविक है। अतः ईश्वर, जीव और प्रकृति ये तीन अनादि और शाश्वत सत्तायें हैं। यह तो मुझे पूरा विश्वास अब हो गया है। इस विषय में सत्य प्रकाशन, मथुरा द्वारा प्रकाशित 'पूर्व जन्म स्मृतिः एक अध्ययन' से भी सत्य निर्णय में मुझे बड़ी सहायता मिली।

विज्ञान और आस्तिकता

सुरेश—(मुस्काते हुए) धन्यवाद तब हमारा बहुत बड़ा काम हो गया। अब आपको धर्म और मत का अन्तर जानना बहुत आसान होगा। मैं तो जैसा कि तुम जानते हो विज्ञान का विद्यार्थी हूँ, विज्ञान के अन्य अधिकांश छात्रों तथा उनके प्रोफेसरों की तरह ही मैं भी सोचता था कि यह संसार तो भूतों या तत्वों का संघात मात्र है। विभिन्न तत्व विभिन्न मात्रा में परस्पर मिलकर इस अनोखे संसार को स्वयं ही बना डालते हैं। जैसे हाइड्रोजन और आक्सीजन मिलकर जल बन जाता है। इसी तरह मैं सोचता था माता-पिता मिलकर सन्तान बना लेते हैं। इस सबमें ईश्वर की क्या जरूरत? पर एक बार जब हमारे घर पर पूज्य पिताजी के साथ एक आर्य विद्वान पधारे तो उन्होंने शीघ्र ही मेरे इस भ्रम को मिटा दिया। बोले–बेटे, यह तो ठीक है कि हाइड्रोजन और आक्सीजन मिलकर जल बन जाता है पर तुम तो जानते हो कि आखिर हम इसे एक नियमका ही नाम तो देंगे? और फिर इस नियम के भीतर भी एक नियम है कि (H_2O)इस सूत्र के अनुसार हाइड्रोजन के दो भाग और आक्सीजन का एक भाग मिलेगा तब ही जल बनेगा। दोनों को आधा-आधा मिलायें या हाइड्रोजन का एक और आक्सीजन के दो भाग मिलायें तो क्या जल बनेगा? नहीं, न बनेगा? तो पता लगा कि सृष्टि के सम्पूर्ण संचालन में कुछ नियम काम करते हैं? और जब मैंने बड़ी ही शीघ्रता में कहा कि मान्यवर, इन नियमों का पता तो वैज्ञानिकों ने किया तो उन्होंने बड़े प्यार से मेरी पीठ सहलाते हुए बताया—मेरे बच्चे! तुम ठीक कहते हो वैज्ञानिक ने नियम का पता लगाया, पर प्यारे बेटे इस नियम का निर्माण किसने किया। जब तक वैज्ञानिक ने इसका पता नहीं लगाया था, यह नियम तो तब भी काम करता था। बस, मेरे बेटे सृष्टि के अटल नियमों का नाम है, ऋत और इनका निर्माता है–ईश्वर।

कुछ रुक कर वे बोले—वत्स! माता-पिता सन्तान को

बनाते हैं,तुम्हारा यह विचार भी सत्य नहीं है। देखो घड़ी के निर्माता को उसके हर पुर्जे का ज्ञान रहता है, क्या कोई माता-पिता यह बता सकता है कि आँख के काले कोये (तारे) का निर्माण उन्होंने किस मसाले से किया है ? माता-पिता को तो यह भी ज्ञात नहीं होता कि माता के गर्भ में पुत्र बन रहा है या पुत्री? फिर एक ही माता-पिता से जन्म लेने वाले दो बालक शरीर, बल, धन, विद्या बुद्धि किसीमेंसमान क्यों नहीं होते ? यहाँ उन्होंने ईश्वर, जीव, प्रकृति इस वैदिक त्रैतवाद का रहस्य मुझे खोलकर समझाया जिससे मेरा सम्पूर्ण भ्रम जाता रहा और मैं यह भली भाँति समझ गया कि चित्र है तो चित्रकार अवश्यहै, कला है तो कलाकार होना चाहिये, रचना बिना रचियता के असम्भ है, इसी प्रकार काव्य स्वयं क व के अस्तित्व का प्रमाण है और मेरा अन्तर्मन कवि के शब्दों में गा उठा–

पता पत्ता-पत्ता तेरा दे रहा है।
सरासर गलत है कि तू लापता है ॥

प्रिय मित्र ! तुम्हें शायद यह तो ज्ञात ही होगा कि कुछ तो मतान्ध पन्थाइयों के जुल्मों की प्रतिक्रिया स्वरूप और कुछ अपनी वैज्ञानिक खोजों से जगे अभिमानवश, जिस वैज्ञानिक ने ईश्वर विश्वास को अफीम का नशा बताकर ईश्वर के अस्तित्व को अस्वीकार किया था आज आइस्टीन जैसे अनेक चोटी के वैज्ञानिकों ने बड़े नम्र भाव से ईश्वर की सत्ता को माना है। पं० गङ्गाप्रसाद उपाध्याय कृत 'आस्तिकवाद' स्वामी दर्शनान्द कृत "दर्शनान्द ग्रन्थ संग्रह" (पूर्वाद्ध) "स्वर्गीय पं० सिद्धगोपाल जी विरचित दो मित्रों या दो बहिनों की बातें" उन्हीं की प्रेरणा से इन ग्रन्थों के पाठ से मेरा यह ईश्वर विश्वास और भी निखर गया।

सृष्टि की अ.यु

हाँ तो ईश्वर है और वह सृष्टिकर्त्ता है यह तो आप मानते ही

हैं। अब आप क्या यह बता सकेंगे कि यह सृष्टि कितनी पुरानी है अर्थात् सृष्टि की आयु क्या है ?

रमेश— इस विषय में भी पहले मैं सृष्टि की आयु कुछ हजार वर्ष, फिर कुछ लाख वर्ष और अब कुछ विद्वानों और वैज्ञानिकों के मतानुसार करीब २० करोड़ साल मानता हूँ।

सुरेश— मित्रवर, पर शायद तुम्हें यह ज्ञात नहीं कि रेडियम धातु के आविष्कार के पश्चात् वैज्ञानिकों की अन्तिम मान्यता यह है कि यह हमारी वर्त्तमान सृष्टि करीब दो अरब वर्ष पुरानी है। हमारे पूर्वज आर्यों ने इसकी निश्चित गणना की हुई थी। किसी भी 'संकल्प' के समय उसे आज भी बोला जाता है। उसके अनुसार यह सृष्टि १९७२९४९०८२ वर्ष पुरानी है।

रमेश—इस जानकारी के लिये धन्यवाद ! पर मित्रवर, इससे हमारे मूल प्रश्न का क्या सम्बन्ध ?

ईश्वरीय ज्ञान की आवश्यकता

सुरेश—प्रिय भाई मैं वहीं आ रहा हूँ। अच्छा आप यह तो जानते ही हैं कि हर राज्य का संविधान होता है। हमारा देश जब अंग्रेजों को गुलामी से छूटा। हमारा गणतन्त्र शासन शुरू हुआ तो उसके साथ ही हमारा गणतन्त्र संविधान बना। और उसी संविधान या कानून संहिता के अनुसार देश का शासन चलता है। जो उसका पालन करते हैं वे सुखी रहते हैं जो उसके विरुद्ध चलते हैं उन्हें सजा दी जाती है। क्यों ठीक है न ?

रमेश—हाँ, यह तो ठीक है पर उससे क्या !

सुरेश—मित्र, तुम समझो। जब छोटे से छोटे राज्यों के संचालन के लिये एक संविधान या कानून संहिता चाहिये तब क्या सारी सृष्टि के संचालन के लिये किसी कानून संहिता या संविधान की जरूरत न थी ! आखिर जब ईश्वर कर्मफल देता है और जीवात्मा कर्म फल पाता है (यह तो तुम मानते ही हो) तब उस कर्म फल

बनाते हैं, तुम्हारा यह विचार भी सत्य नहीं है। देखो,घड़ी के निर्माता को उसके हर पुर्जे का ज्ञान रहता है, क्या कोई माता-पिता यह बता सकता है कि आँख के काले कोये (तारे) का निर्माण उन्होंने किस मसाले से किया है ? माता-पिता को तो यह भी ज्ञात नहीं होता कि माता के गर्भ में पुत्र बन रहा है या पुत्री ? फिर एक ही माता-पिता से जन्म लेने वाले दो बालक शरीर,बल,धन,विद्या,बुद्धि किसी में समान क्यों नहीं होते ? यहाँ उन्होंने ईश्वर,जीव,प्रकृति इस वैदिक त्रैतवाद का रहस्य मुझे खोलकर समझाया जिससे मेरा सम्पूर्ण भ्रम जाता रहा और मैं यह भली भाँति समझ गया कि चित्र है तो चित्रकार अवश्यहै कला है तो कलाकार होना ही चाहिए, रचना बिना रचयिता के असम्भव है, इसी प्रकार काव्य स्वयं कवि के अस्तित्व का प्रमाण है और मेरा अन्तर्मन कवि के शब्दों में गा उठा—

पता पत्ता-पत्ता तेरा दे रहा है।
सरासर गलत है कि तू लापता है ॥

प्रिय मित्र ! तुम्हें शायद यह तो ज्ञात ही होगा कि कुछ तो मतान्ध पन्थाइयों के जुल्मों की प्रतिक्रिया स्वरूप और कुछ अपनी वैज्ञानिक खोजों से जगे अभिमानवश,जिस वैज्ञानिक ने ईश्वर विश्वास को अफीम का नशा बताकर ईश्वर के अस्तित्व को अस्वीकार किया था आज आइंस्टीन जसे अनेक चोटी के वैज्ञानिकों ने बड़े नम्र भावसे ईश्वर को सत्ता को माना है। पं० गङ्गाप्रसाद उपाध्याय कृत 'आस्तिकवाद' स्वामी दर्शनानन्द ग्रन्थ कृत 'दशानानन्द ग्रन्थ संग्रह' (पूर्वार्द्ध) 'स्वर्गीय पं० सिद्धगोपाल जी विरचित दो मित्रों या दो बहिनों की बात' उन्हीं की प्रेरणा से इन ग्रन्थों के पाठ से मेरा यह ईश्वर विश्वास और भी निखर गया।

सृष्टि की आयु

हाँ तो, ईश्वर है और वह सृष्टि कर्त्ता है यह तो आप मानते ही

हैं। अब आप क्या यह बता सकेंगे कि यह वर्त्तमान सृष्टि कितनी पुरानी है अर्थात् सृष्टि की आयु क्या है ?

रमेश-- इस विषय में भी पहले मैं सृष्टि की आयु कुछ हजार वर्ष फिर कुछ लाख वर्ष और अब कुछ विद्वानों और वैज्ञानिकों के मतानुसार करीब २० करोड़ साल मानता हूँ।

सुरेश—मित्रवर, पर शायद तुम्हें यह ज्ञात नहीं कि रेडियम धातु के आविष्कार के पश्चात् वैज्ञानिकों की अन्तिम मान्यता यह है कि यह हमारी वर्त्तमान सृष्टि करीब दो अरब वर्ष पुरानी है। हमारे पूर्वज आर्यों ने इसकी निश्चित गणना की हुई थी। किसी भी संकल्प के समय उसे आज भी बोला जाता है। उसके अनुसार यह सृष्टि १९७२९४९०८१ वर्ष पुरानी है।

रमेश—इस जानकारी के लिए धन्यवाद ! पर मित्रवर, इससे हमारे मूल प्रश्न का क्या सम्बन्ध ?

ईश्वरीय ज्ञान की आवश्यकता

सुरेश—प्रिय, भाई मैं वहीं आ रहा हूँ। अच्छा आप यह तो जानते ही हैं कि हर राज्य का संविधान होता है। हमारा देश जब अंग्रेजों की गुलामी से छूटा। हमारा गणतन्त्र शासन शुरू हुआ तो उसके साथ ही हमारा गणतन्त्र संविधान बना। और उसी संविधान या कानून संहिता के अनुसार देश का शासन चलता है। जो उसका पालन करते हैं वे सुखी रहते हैं जो उसके विरुद्ध चलते हैं उन्हें सजा दी जाती है। क्यों ठीक है न ?

रमेश—हाँ, यह तो ठीक है पर उससे क्या ?

सुरेश—मित्र, तुम समझो। जब छोटे से छोटे राज्यों के संचालन के लिए एक संविधान या कानून संहिता चाहिए तब क्या सारी सृष्टि के संचालन के लिये किसी कानून संहिता या संविधान की जरूरत न थी ! आखिर जब ईश्वर कर्म फल देता है और जीवात्मा कर्म फल पाता है (यह तो तुम मानते ही हो) तब किसी कर्म फल

के अच्छे या बुरे होने की कसौटी क्या है ? प्रकट है कि अवश्य ही ईश्वर ने भी सृष्टि के आरम्भ में ही (बीच में नहीं) अपना संविधान या ईश्वरीय ज्ञान मनुष्य को दिया जो सत्कर्म या दुष्कर्म की कसौटी है। उस संविधान कानून संहिता या ईश्वरीय ज्ञान का ही नाम है-वेद !

अच्छा, अब एक और प्रकार से सोचिये कि यों सामान्य ज्ञान तो मनुष्य क्या पशु पक्षी को भी होता है, पर मनुष्य को विशेष ज्ञान किसी निमित्त से- माता, पिता, आचार्य या किसी ग्रन्थ विशेष से होता है। तो हमें अपने माता-पिता या गुरु से नैमित्तिक ज्ञान मिला। हमारे गुरुदेव को अपने गुरुवर्य से। इसी क्रम से हम पीछे चलते चले जायें तो एक प्रश्न सामने आता है कि सृष्टि के आदि में मनुष्य को नैमित्तिक ज्ञान किस गुरु से मिला ? दर्शनकार ने इस समस्या का समाधान दिया है-

"स एष पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानऽवच्छेदात्"

समय की सीमाओं के पार (सृष्टि के आदि में) वह परमात्मा ही सब का गुरु है। उस आदि गुरु के ज्ञान-ईश्वरीय ज्ञान का ही नाम है--वेद।

रमेश कुछ कहना ही चाहते थे कि सुरेश ने कहा-अभी रुकिये एक और पहलू से विचारिये कि परमात्मा ने मनुष्य को नेत्र दिये। नेत्रों का क्या काम है-देखना। पर क्या बिना सूर्य की सहायता के हम नेत्रों से देख सकते हैं? अंधेरी रात में हमारी आँख तो हमारे पास होती हैं, पर बिना प्रकाश के उनकी कोई उपयोगिता नहीं क्योंकि हम कुछ देख नहीं पाते। क्यों ठीक है न ?

रमेश-यह तो ठीक है, पर इससे आपका क्या अभिप्राय ?

सुरेश-वही तो कहता हूँ। देखिये, जैसे बाहर के संसार को देखने के लिये ये दो भौतिक नेत्र हैं, वैसे ही तत्व दर्शन या किसी वस्तु के आभ्यान्तर को देखने के लिये एक नेत्र परमात्मा ने और दिया है। उसे त्रिनेत्र या अन्तश्चक्षु भी कहते हैं। साधारण रूप में उस नेत्र का

नाम है बुद्धि या विवेक। तो मित्रवर, जिस तरह इन भौतिक नेत्रों की सहायता को संसार के सभी प्राणियों के हितार्थ ईश्वर ने यह भौतिक सूर्य दिया, जिसके अभाव में संसार के सभी लोगों के नेत्र व्यर्थ हैं, उनकी कोई उपयोगिता नहीं, वैसे ही अन्तश्चक्षु—विवेक या बुद्धि की सहायता के लिये भी उस दयालु परमात्मा ने सूर्यवत् अपना वेद ज्ञान मानव सृष्टि के साथ ही दिया, जिसके अभाव में मनुष्य की बुद्धि जो भी क्रिया करेगी वह अंधेरे में टटोल करने और ठोकर खाने के समान है। इतना अन्तर अवश्य है कि भौतिक सूर्य का सम्बन्ध मनुष्येतर पशु-पक्षियों से भी है और ईश्वरीय ज्ञान–वेद सूर्य केवल मनुष्यों के लिये है।

मित्रवर,इस संक्षिप्त विवेचन से आपने यह समझने की कोशिश की होगी कि जीवात्मा की कर्म फल व्यवस्था और सृष्टि के सञ्चालन के लिये ईश्वरीय कानून संहिता या परम गुरु ईश्वर के ज्ञान अथवा मानव बुद्धि की सहायता के लिये सूय रूप ईश्वरीय ज्ञान की आवश्यकता है। और उसी ईश्वरीय ज्ञान का नाम है—वेद।

रमेश–मित्रवर! ईश्वर के अस्तित्व में तो मेरा विश्वास था ही आज ईश्वरीय ज्ञान की अनिवार्य आवश्यकता का अनुभव भी आपने करा दिया है। तदर्थ बहुत-बहुत धन्यवाद! पर मैं अभी यह नहीं समझ सका हूँ कि वेद ही ईश्वरीय ज्ञान क्यों है? आखिर मुसलमान भाई भी कुरान को खुदा का कलाम या ईश्वरीय ज्ञान कह सकते हैं और इसी प्रकार ईसाई बाइबिल को और पारसी जेन्दावस्ता को, ईश्वरीय ज्ञान कहेंगे।

सुरेश–कहेंगे नहीं, कहते हैं। पर मित्र! यों कहने से तो 'अलीबाबा और चालीस चोर'को कहानी कोभी कोई अपना धर्म ग्रन्थ बताकर ईश्वरीय ज्ञान कह सकता है। पर जो कसौटी पर खरा उतरे माना तो उसी को जायगा न?

ईश्वरीय ज्ञान की कसौटी

रमेश–यह तो बिलकल ठीक है। तब ईश्वरीय ज्ञान की

कसौटी क्या हैं, यह भी बताने की कृपा आप कीजिएगा।

सुरेश—मित्र, आप एक कसौटी तो स्वयं ही विचार सकते थे कि ईश्वरीय ज्ञान मानव सृष्टि के साथ ही मिलना चाहिए, ठीक उसी तरह जैसे किसी देश का संविधान वहाँ के शासन संचालन के प्रारम्भ में ही जरूरी है। यह ईश्वरीय ज्ञान की पहली कसौटी है। क्योंकि ईश्वरीय ज्ञान का प्रकाशित होना यदि बाद में माना जाये तो पहले वाले लोगों के कर्मफल की व्यवस्था का आधार क्या था ?

(२) ईश्वरीय ज्ञान की दूसरी कसौटी है कि वह पूर्ण होता है। अपूर्ण या अधूरा नहीं जिसे धीरे-धीरे कई बार से पूर्ण किया जावे।

(३) ईश्वरीय ज्ञान, विज्ञान और बुद्धि के अनुकूल होगा, विरुद्ध नहीं।

(४) ईश्वरीय ज्ञान सृष्टि नियमों के अनुकूल होता है, विपरीत नहीं।

(५) ईश्वरीय ज्ञान में किस्से कहानी या किन्हीं व्यक्तियों का इतिहास या देश विशेष का भूगोल नहीं होता।

(६) ईश्वरीय ज्ञान में सार्वकालिक और सार्वभौमिक सनातन सत्यों Eternal truths, Unchangeable truths)का उपदेश होता है। किसी देश विशेष, किसी वर्ग विशेष या काल विशेष से सम्बन्धित व्यवस्थायें नहीं।

(७) ईश्वरीय ज्ञान किसी देश विशेष की भाषा में नहीं होता।

(८) ईश्वरीय ज्ञान में कर्त्तव्य विधान और अकर्त्तव्य निषेध के साथ ही सभी सत्य विद्यायें—पदार्थ विद्या, रसायनशास्त्र, भौतिक शास्त्र, जीव विज्ञान, वनस्पति विज्ञान, अर्थशास्त्र, गणित शास्त्र, नीतिशास्त्र, राजनीति, आयुर्वेद, धनुर्वेद, सङ्गीत, शिल्प तथा अन्यान्य मानवोपयोगी विद्यायें—बीज रूप में होती हैं। व्यर्थ की ऊलजलूल गप्पों और चमत्कारों के लिए उसमें कोई स्थान नहीं होता।

रमेश—हाँ, ठीक बहुत ठीक। ये कसौटियाँ तो बहुत ठीक हैं।

वेद ही ईश्वरीय ज्ञान क्यों ?

सुरेश—मित्रवर, इनमें से एक २ कसौटी पर जब तुम इन सभी को कसकर देखोगे तो तुमको ज्ञात होगा कि केवल और केवल वेद ही ईश्वरीय ज्ञान ठहरता है। इन सभी पर विस्तार से विचार का तो अभी अवकाश नहीं है पर इतना तो सभी जानते और मानते हैं कि इन सबमें वेद ही सबसे प्राचीन है। मैक्समूलर तक को लिखना पड़ा--Rigved is the oldest book in the library of the world।' अर्थात् ऋग्वेद विश्व के पुस्तकालय में सबसे प्राचीन पुस्तक है। फिर वेदज्ञान पुस्तक रूप में--चार वेदों के रूप में--तो बहुत पीछे लिख या छपकर तैयार हुआ। ऋषियों द्वारा सुनने-सुनाने के रूप में तो यह ज्ञान-धारा सृष्टि के आदि से ही चलती थी। इसलिये वेदों को 'श्रुति' भी कहते हैं।

इन ग्रन्थों में जेन्दावस्ता की आयु लगभग पौने पाँच हजार वर्ष है। कुरान को १३०० साल से कुछ अधिक हुए हैं। बाइबिल के ओल्ड टेस्टामेण्ट और न्यू टेस्टामेण्ट दो भाग हैं। ईसा के जन्म को ही जब १९८१ साल हुए हैं तो बाइबिल का पुराना भाग भी इससे पीछे का ही है।

स्पष्ट है कि वेद ही प्राचीनतम अथवा सृष्टि के आदि में दिया गया ईश्वरीय ज्ञान है।

रमेश--हाँ, इतना तो मैं समझ गया कि वेद ही इन सबमें प्राचीनतम है। इस कसौटी पर यही ईश्वरीय ज्ञान हो सकता है।

सुरेश--प्रियवर! ईश्वरीय ज्ञान की दूसरी कसौटी है कि वह पूर्ण हो। अधूरा न हो, अन्यथा पहले वाले लोगों के साथ पूरा-पूरा न्याय नहीं माना जायगा। कुरान वालों का यह कहना कि ईश्वरीय ज्ञान कई बार में दिया गया व कुरान अन्तिम ज्ञान है अथवा कुछ का यह मानना कि अब तक बराबर ईश्वरीय ज्ञान दिया जा रहा है ठीक नहीं है। हर मनुष्य की अन्तरात्मा की प्रेरणा इससे सर्वथा भिन्न है

हाँ, उस अन्तरात्मा की आवाज का आधार ईश्वरीय ज्ञान हो सकता है। इसी प्रकार ओल्ड टेस्टामेण्ट और न्यू टेस्टामेण्ट की बात भी ईश्वरीय ज्ञान में नहीं घटती। अतः इस कसौटी पर भी वेद ही ईश्वरीय ज्ञान सिद्ध होता है। उसी प्रकार अन्य कसौटियों पर जब हम वेद तथा अन्य तथाकथित दावेदार ईश्वरीय ज्ञानों को परखते हैं तो अन्य सभी मत-पन्थों की इन पुस्तकों का खोट बोल उठता है और एकमेव वेद ही इन सभी कसौटियों पर खरा उतरता है। फिर वेद का तो अर्थ ही है 'ज्ञान'। अन्य कुरान, बाइबिल आदि में यह विशेषता नहीं है।

रमेश - मित्रवर, सुरेश ! मैं आपका बहुत ऋणी हूँ। मैं आज भली प्रकार समझ सका हूँ कि ईश्वर है। उसे सृष्टि-शासन के संचालन विशेष रूप से मानव के कर्मफल की व्यवस्था के आधारभूत ईश्वरीय ज्ञान देने की आवश्यकता थी। उस ज्ञान का नाम है—वेद ! पर आपको तो धर्म और मत का अन्तर बताना था।

धर्म एक है—वैदिक धर्म=सनातन धर्म=मानव धर्म

सुरेश--मित्र रमेश जी ! बस, अब मैं यही बताने लगा हूँ कि धर्म क्या है? अब आप मानते हैं कि ईश्वर है और एक है--दो-चार या दस-पाँच नहीं। उस ईश्वर का ज्ञान है वेद। बस, ईश्वर के इस वेदज्ञान के अनुसार चलना, वेदाज्ञा का पालन ही धर्म है तो ईश्वर एक है, ईश्वरीय ज्ञान एक है वेद। तब धर्म भी एक हुआ-- वेदानुकूल आचरण अथवा वैदिक धर्म। यह वैदिक धर्म ही विश्व धर्म है मानव धर्म है। (यह ऊपर बताई हुई कसौटियों के अनुसार) सार्वभौम (सार्वदेशिक) और सार्वकालिक धर्म है। वैदिक धर्म और विज्ञान हाथ में हाथ मिलाकर चलते हैं। वे परस्पर अविरोधी हैं। वैदिक धर्म शाश्वत सचाइयों का निदर्शन है। अतः वही सनातन धर्म है, नित्य धर्म है, सत्य और शाश्वत धर्म है और एकमेव धर्म है, इसमें लोक और परलोक, भाग्य और पुरुषार्थ, व्यष्टि और समष्टि, श्रद्धा और विवेक, ज्ञान, कर्म, उपासना और विज्ञान तथा सत्य

शिवम् और सुन्दरम् का सुखद और वे कल्याणकारी समन्वय है।

धर्म और मत का अन्तर

रमेश—ठीक है, धर्म तो एक है–मानव धर्म या वैदिक धर्म फिर पारसी, यहूदी, मुसलमान, ईसाई, बौद्ध जैन आदि ये सब क्या हैं ?

सुरेश—मित्रवर ! ये सब मत हैं, पन्थ हैं, सम्प्रदाय हैं। और अब आप धर्म और मत का अन्तर आसानी से समझ सकोगे(१) पहिला अन्तर यह है कि धर्म एक है, मत-पन्थ या सम्प्रदाय अनेक (२) धर्म का आधार है ईश्वर जबकि मत पन्थ का आधार है मनुष्य। पारसी मत में से जरुथुश्त को निकाल दीजिए, पारसी मत निराधार हो जायेगा। बौद्ध मत से महातमा बुद्ध या 'बुद्धं शरणं गच्छामि' को अलग कर लीजिये, वह लड़खड़ा कर गिर जायेगा। जैन मत में से महावीर स्वामी और अन्य तीर्थंकरों को हटा देने पर सर्व शून्यता आ विराजेगी। ईसाई मत की नींव तो स्पष्टतः महात्मा ईसा के नाम पर ही खड़ी है, उसे हटाओ कि वह भरभरा कर गिरा। उसी प्रकार मुहम्मदी (इस्लाम) मत मुहम्मद सा० के सहारे है। कुरान की पहली आयत के द्वारा ही खुदा के साथ मुहम्मद का साझा प्रकट है। तभी तो एक इस्लामी बन्धु की यह उक्ति प्रसिद्ध है—

'अल्लाह के पल्ले में वहदत के सिवा क्या है ?
जो कुछ भी लेना है ले लेंगे, मुहम्मद से।'

इसी प्रकार सिख मत का आधार है गुरु नानक, कबीर पन्थ का महात्मा कबीरदास, दादू पन्थ का दादूदयाल आदि। आधुनिक राधा स्वामी, हंसा मत, ब्रह्माकुमारी मत जय गुरुदेव, सतसाईं मत और आनन्द मार्ग आदि की भी यही दशा है।

(३) धर्म का आधार है ईश्वरीय ज्ञान-वेद। मत-पन्थों के आधार हैं मनुष्यों के तत्कालीन सुधार प्रयास जो अल्पज्ञ मनुष्य के सीमित ज्ञान की देन हैं और कई बार उनमें स्वार्थ और मिथ्या यश-

लिप्सा भी बोलती होती है। ईश्वरीय ज्ञान वेद की जो कसौटियाँ ऊपर बताई गई हैं उन पर खरे सिद्ध न होने वाले अन्धश्रद्धा आदि पर आधारित इन मत पन्थों में चमत्कारवाद, सृष्टि नियम विरुद्ध बातें, विज्ञान और बुद्धि विरुद्ध बातें तथा व्यक्ति पूजा और जड़ पूजा के दोष ही प्रायः भरे पड़े हैं।

(४) धर्म सूर्यवत् सारे संसार के लिए है और सार्वकालिक है। मत-पन्थ दीपक, लालटेन या बल्ब आदि की भाँति हैं जो एक सीमा विशेष के लिये तत्कालीन परिस्थितियों या समस्याओं के समाधान के विचार से हैं। (सूर्य के अभाव में अज्ञान रूपी रात्रि के अंधेरे में) वे सुधारकों द्वारा प्रस्तुत हुए हैं। जिस प्रकार दीपक और लालटेन में जो प्रकाश होता है, वह भी सूर्य का ही होता है। इसी तरह इन विविध मत-पन्थों में भी जो अच्छाइयाँ हैं,वह भी धर्म-सूर्य वेद (ईश्वरीय ज्ञान) की ही देन हैं। हाँ, उनमें कई बार तो स्वयं सुधारकों की भावना के विरुद्ध जा गुरुडम, पाखण्ड, अन्ध-विश्वास, अन्ध-श्रद्धा के तत्व हैं–वे सब मानव बुद्धि के विकार और स्वार्थ का परिणाम हैं।

मानव सृष्टि के आदि से लेकर लगभग ५००० वर्ष पूर्व महाभारत काल के कुछ समय पूर्व तक सारी दुनियाँ में एक ही धर्म था वैदिक धर्म, एक ही धर्म ग्रन्थ था—वेद, एक ही गुरु मन्त्र था– गायत्री-एक ही अभिवादन था--नमस्ते, एक ही उपास्यदेव था--ईश्वर (जिसका मुख्य और निज नाम है ओ३म्) संसार के सभी श्रेष्ठ मनुष्यों की एक संज्ञा थी--आर्य। एक ही भाषा थी--संस्कृत आदि। पर काल गति विचित्र है। हमारे अग्रजन्म ब्राह्मणों के आलस्य और प्रमाद ने उन्हें स्वार्थ के वशवर्ती बना दिया बस फिर क्या था मनुष्य का स्वार्थ और अहं फुंकार उठा। विविध मत मतान्तर उसी की देन हैं। वेद सूर्य के लुप्तप्राय होने पर अंधेरे में सुधारकों ने प्रायः सद्भावना से ही जो सुधार किये या धर्म के किसी तत्व विशेष के जो दीपक जलाये कालान्तर में उन्होंने, उन सुधारकों के नाम पर मत

पन्थों का रूप ले लिया। परिणाम यह हुआ वे सुधार महा भयङ्कर बिगाड़ बन गये, वे सुधार सीमित क्षेत्र की समस्याओं के समाधान के रूप में थे, पर मत पन्थ का रूप लेकर जब वे शाश्वत धर्म का दावा करने लगे तो स्वार्थ और अज्ञान का दौर शुरू हुआ तथा इन मत पन्थों के संघर्ष और अत्याचारों से मित्रवर तुम्हारे ही शब्दों में माँ मानवता कराह उठी !

'वेदों की ओर ओर लौटो'--ऋषि दयानन्द का उद्घोष

युगों के बाद तब कहीं ईश-कृपा से इस पुण्य भूमि भारत में ऋषि दयानन्द का आगमन हुआ और उन्होंने मत-पन्थों की ओर से पीड़ित, संत्रस्त-पिटती मिटती मानव प्रजा को पुकारकर कहा—'वेदों की ओर लौटो !' मत मतान्तरों की पगदण्डियों में भटक रही मानव सन्तान को फिर वेद के शाही रास्ते (राज पथ) में लाने के लिए ही ऋषि दयानन्द ने आर्यसमाज की स्थापना की। इसीलिए मैंने कहा था कि आर्यसमाज कोई मत पन्थ नहीं। वह है वेद प्रचारक संघ या मानव-निर्माण आन्दोलन।

रमेश—प्रिय मित्र, पर आर्यसमाज की स्थापना तो स्वामी दयानन्द ने अब से लगभग १०० वर्ष पूर्व की। तब आर्यसमाज 'दयानन्द मत' क्यों नहीं, वेद प्रचारक संघ कैसे ?

आर्यसमाज के दस नियम : मानव धर्म सूत्र दशक

सुरेश—मित्रवर स्वामी दयानन्द ने आर्यसमाज की स्थापना मतपन्थ के रूप में की ही नहीं। उन्होंने आर्यसमाज की स्थापना ही वेद और वैदिक धर्म के प्रचार के लिए की। आर्यसमाज के सदस्य 'दयानन्दी' नहीं, वैदिक धर्मी हैं। (अपने थैले से 'नित्यकर्म विधि' की एक पुस्तक निकालते हुए सुरेश ने कहा—) और देखिये ये हैं आर्यसमाज के दश नियम, इन्हें पढ़ जाइये। आपको लगेगा ये मानव धर्म के दश सूत्र हैं। इनमें क्या कहीं भी आपको 'दयानन्द' शब्द मिलता

है। एक-एक नियम को ध्यान से पढ़िये, गम्भीरता से सोचिये। ईश्वर, ईश्वरीय ज्ञान वेद और धर्म का सत्य स्वरूप—यही है आर्यसमाज के इन दश नियमों की आत्मा। तृतीय नियम को पढ़िये तो-यहाँ धर्म नहीं 'परम धर्म' बताया है-वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना। अपने अमर ग्रन्थ 'सत्यार्थ प्रकाश' का पढ़ना-पढ़ाना परम धर्म नहीं कहा। 'सत्यार्थ प्रकाश' का तो कहीं नाम तक इन नियमों में नहीं है।

सत्यार्थ प्रकाश के स्वर : मानवता के स्वर

सत्यार्थ प्रकाश की भूमिका, ११ से चौदहवें समुल्लास की अनुभूमिकायें, स्वमन्तव्यामन्तव्य, ऋषि जीवन की अनेक झाँकियाँ और ऋषि के अन्य ग्रन्थों के अनेक-अनेक उद्धरणों की आत्मा को समझो आपको ज्ञात होगा कि अनेक-अनेक मत-पन्थों से छलनी बनी खण्ड-खण्ड बनी हुई मानवता के आँसू पोंछने के लिए ही उन्होंने विश्व मानव को एकमेव सद्धर्म वेद का ही सन्देश युगों-युगों के बाद हमें दिया। किसी नये मत-पन्थ का अपने नाम से प्रचलन—ओह ! उसकी तो कल्पना भी ऋषि के निकट घोरतम पाप थी।

आर्यसमाज दयानन्द पन्थ या दयानन्द मत नहीं

रमेश—तब क्या ऋषि दयानन्द ने कोई नई राह हमें नहीं दी, कोई नई देन हमें नहीं दी ?

सुरेश—नहीं, बिल्कुल नहीं। उन्होंने स्पष्ट कहा—'ब्रह्मा से लेकर जैमिनि पर्यन्त ऋषियों का जो मत है और जो वेद प्रतिपादित सत्य है मैं उन्हीं को प्रस्तुत कर रहा हूँ। कितनी उदारता के साथ ऋषि ने लिखा--'और मेरे इस प्रयास में भी कहीं कुछ त्रुटि हो तो विश्व हित को दृष्टि में रख विद्वज्जन् उसमें भी आवश्यक संशोधन कर सकते हैं।' मित्रवर ! क्या कोई मतवादी या पन्थाई यह कह सकेगा ?

रमेश–निश्चय ही नहीं। मित्र, निश्चय ही नहीं।

ऋषि ने भूला हुआ वेद-पथ बताया।
और आत्म स्वरूप का बोध कराया।।

सुरेश–प्रिय मित्र ! देव दयानन्द ने हमें बताया कि संसार का पहिला मानव—आर्य था। ऋषि ने हमें भूला हुआ आत्म स्वरूप याद कराया। हम भूल चुके थे अपना नाम, ऋषि ने उसे फिर याद कराया, हम भूल चुके थे हमारे देश का नाम आर्यावर्त्त है, हमारा सनातन अभिवादन नमस्ते है, मानव मात्र का गुरु मन्त्र गायत्री और उपास्य-देव एक ओ३म् है। ऋषि ने हमें याद कराया—'आर्य हमारा नाम है, वेद हमारा धर्म। ओ३म् हमारा देव है, सत्य हमारा कर्म।'

वैदिक धर्म ही मानव धर्म

रमेश–प्रिय भाई ! किन शब्दों में मैं आपका धन्यवाद करूँगा मैं नहीं सोच पा रहा। मेरा रोम-रोम आपका कृतज्ञ है, जिस मानव धर्म को मैं अपने मन मन्दिर में पूजा करता रहा हूँ, यह जानकर कि वैदिक धर्म ही वह मानव धर्म है और आर्यसमाज कोई मत-पन्थ या सम्प्रदाय न होकर उसी वैदिक या मानव धर्म का प्रचारक संघ है। तथा हम सबके गुरुदेव दयानन्द उसी मानव धर्म एवं विश्व मानवता के अग्रदूत थे, मुझे जो शान्ति मिली है वह तो 'स्वयं तदन्त: करणेन ग्राह्यते' अन्तरात्मा का ही विषय है। प्रभु हमें शक्ति-भक्ति दें कि हम स्वयं के आचरण द्वारा वैदिक धर्म एव माँ मानवता का अर्चन कर सकें तभी संसार ऋषि दयानन्द के सच्चे गौरव को समझेगा और एक स्वर से कहेगा—'आर्य समाज अमर है।'

: २ :

रमेश के पास ही खड़ा था उसका ममेरा भाई दिनेश। अब तक वह सर्वथा शान्त रहकर उक्त दोनों की 'मित्रवार्ता' सुन रहा था।

उसकी समाप्ति पर विनम्र भाव से सुरेश को सम्बोधित करते हुए दिनेश ने कहा—यदि आज्ञा हो तो मैं कुछ निवेदन करना चाहता हूँ।

रमेश के द्वारा दिनेश का परिचय पाकर और उसकी शीलता शिष्टता एवं व्यवहार कुशलता से अत्यधिक प्रसन्न हो सुरेश ने कहा—अवश्य, अवश्य ! आप निःसंकोच इस विषय में अपने विचार रखिये।

भ्रान्तियों के दो कारण—पोप लीला और लोप लीला

दिनेश—भाई साहब आपने तो आर्यसमाज का परिचय देते हुए उसे आस्तिक (ईश्वर विश्वासी) वेदानुयायी और धर्म प्रचारक बताया है पर बचपन से ही मैं सुनता रहा हूँ,कि आर्यसमाजी नास्तिक होते हैं जो न धर्म-कर्म को मानते हैं, न जात-पाँत को, न राम-कृष्ण न गङ्गा-गीता, न व्रत उपवास, न साधु-ब्राह्मण, न दान-पुण्य और तीर्थ एवं त्यौहार (पर्व) को गरज जो किसी को नहीं मानते ऐसे नास्तिकों के टोले का नाम आर्यसमाज है। आपने जो उसका चित्रण किया वह तो सर्वथा भिन्न ही है। फिर इसमें सत्य क्या है ?

सुरेश—प्रियवर दिनेश जी ! सत्य तो वही है जो अभी-अभी मैंने बताया है। पर आपने जो कुछ कहा है उसे सुनकर भी मुझे कुछ आश्चर्य नहीं हुआ। आपने एक बहुत अच्छा प्रश्न किया है जिसके समाधान के बिना आर्यसमाज का परिचय अधूरा ही रहता। प्रियवर, आर्यसमाज के विषय में यह भ्रान्ति आमतौर से सभी जगह पाई जाती है। यह भ्रान्ति कुछ कारणों से तो फैली है और बड़े अंशों में जान बूझकर फैलाई गई है, दो प्रकार के व्यक्ति इस भ्रान्ति के प्रचार के लिए दोषी हैं।

दिनेश—कृपा कर बतायें कि वे कौन २ हैं ?

सुरेश—हाँ, वही बताने लगा हूँ, मैं। देखो दिनेश जी, पहिला दोष और मेरे अपने विचार में तो मुख्य दोष उन आर्य भाई-बहिनों का है जिन्होंने आर्यसमाज के महान् आन्दोलन को सिर्फ 'खण्डन'

तक सीमित समझा है, जिन्होंने विविध मत-पन्थों की समीक्षा (और कभी २ तो बड़ी रूखी, हृदय-हीन और अन्यों को चिढ़ाने तथा नीचा दिखाने तक की हीन-बुद्धि से युक्त होकर) करना ही ऋषि मिशन का अभिप्राय समझा है और जिन्होंने सत्यार्थ प्रकाश के आरम्भ के स्वयं के लिए मननीय और आचरणीय १० समुल्लासों को ताला ठोक कर सिर्फ ११ वें समुल्लास से ही और वह भी उनकी आत्मा (रहस्य) को न समझकर सत्यार्थ प्रकाश देखा है !

दिनेश—इसे थोड़ा और स्पष्ट कीजिए।

सुरेश—मेरा आशय यह है कि जिन्होंने वैदिक धर्म और ऋषि दयानन्द की जय के नारे तो सबसे ऊँचे स्वर से लगाये पर वेद वेदानुकूल सत् शास्त्रों और ऋषि दयानन्द के ग्रन्थों के स्वाध्याय को अपनी दिनचर्या में स्थान नहीं दिया, जिन्होंने मूर्तिपूजा आदि भ्रष्टाचारों का खण्डन तो किया, पर पंच महायज्ञों व यम नियमों को अपने आचरण का अङ्ग नहीं बनाया, जिन्होंने स्थान विशेष—हरिद्वार, काशी मथुरा अथवा जल विशेष गङ्गा यमुना आदि में तीर्थ बुद्धि का खण्डन तो किया पर सच्चे तीर्थ माता-पिता अतिथि, आचार्य की सेवा और सत्य एवं निश्छल व्यवहार को जीवन में स्थान नहीं दिया, जिन्होंने पाखण्डी साधुओं (या स्वादुओं) को तो तिरस्कृत किया, पर वन्दनीय महात्माओं और सच्चे साधुओं का पूजन नहीं किया, जिन्होंने अवतार का खण्डन तो किया पर देव दयानन्द और श्रद्धानन्द आदि के चित्रों के साथ ही अपने घरों में आर्य जाति की गौरव पताका महात्मा श्रीराम और कृष्ण आदि के चित्र नहीं लगाये, जिन्होंने नाम धारी (ब्राह्मणत्व के कलङ्क रूप) ब्राह्मणों का खण्डन तो किया पर आचरणशील विद्वानों और वेदोपदेशक सच्चे ब्राह्मणों की पूजा नहीं की, जिन्होंने अपात्र को दान देने का खण्डन किया पर सत्पात्र को श्रद्धा से दान नहीं किया—एक शब्द में जिन्होंने सर्वनाशी पोप लीला को त्यागा पर 'लोप लीला' को गले लगा लिया। ऐसे लोप

लोलक कर्त्तव्य-शून्य, आलोचना-प्रिय (नहीं, नहीं पर निन्दक) और कथनी एवं करनी में भेद रखने वाले तथाकथित आर्य भाई-बहिन, उपदेशक-प्रचारक, कार्यकर्त्ता या नेता आर्यसमाज के छिपे हुए शत्रु हैं। उन्होंने आर्यसमाज के विषय में इस प्रकार की भ्रान्तियों का शिकार होने या फैलाये जाने के लिए दूसरों को अवसर दिया।

दिनेश—भाई साहिब इस प्रकार की भ्रान्ति के लिए उत्तरदायी दूसरे प्रकार के व्यक्ति कौन हैं ?

सुरेश—प्यारे भाई, क्या आप नहीं समझे ? ये समस्त धर्म ध्वजी, पाखण्डी, पोप, मुल्ला, पादरी, सट्टा बताने अथवा गाँजे का दम लगाने वाले साधु वेश में घोर असाधु, काला अक्षर भैंस बराबर होकर भी ब्राह्मण कहलाने का दम भरनेवाले व भाँग छाननेवाले पूजा (सच्ची ईश्वर भक्ति) के शत्रु 'पुजारी' मिथ्या गप्पें सुनाने वाले 'कथाकार यात्रियों का सर्वस्व लूटने वाले पंडे, जनता की गाढ़ी कमाई पर ऐश करने वाले महन्त और प्रजा का रक्त चूँसकर मोटे होने वाले 'मठाधीश' इन सबने तो अपने गर्हित स्वार्थों की चोट देने वाले, मिथ्या आडम्बर का पर्दाफाश करके फिर भूले हुए वैदिक सद्धर्म की दिव्य ज्योति जन मानस में प्रतिष्ठित करने वाले आर्यसमाज का एक स्वर से विरोध करना ही था। भोली और धर्म के विषय में सर्वथा विमूढ़ (बड़े-बड़े एम० ए०, बी० ए० भी इस विषय में मूढ़ों से भी मूढ़ देखे जाते हैं) जनता को सत्य से दूर रखने के लिए इस स्वार्थी टोले को यह नारा सबसे कारगर प्रतीत हुआ कि आर्यसमाज तो नास्तिक संगठन है, यह राम कृष्णादि, देवी-देवता, किसी को नहीं मानता, आदि। यही कारण है कि आप यद्यपि ग्रेजुएट हैं, पर आपको भी इस भ्रान्ति का शिकार पाकर मुझे आश्चर्य नहीं है।

भ्रान्तियों का निराकरण

दिनेश—भैयाजी, तब क्या आर्यसमाज इन सबको मानता है।

सुरेश—(मुस्कराते हुए) मानता ही नहीं सबसे अधिक मानता

हैं और कहना चाहिए कि आर्यसमाज ही मानता है, अन्य तो मानने का ढोंग मात्र करते हैं।

दिनेश--सो कैसे, भैया जी ?

सुरेश--देखो, दिनेश जी ! आप बतायें कि पहले किसी चीज को जानना होता है, या मानना।

दिनेश--भैया जी, यह तो बड़ी सीधी सी बात है कि हम पहले किसी चीज को जानेंगे, तभी मानेंगे।

सुरेश--ठीक,बहुत ठीक। हम किसी चीज को जानकर ही ठीक रूप में मान सकते हैं। किसी चीज को बिना जाने मानने की बात करना दम्भ है, क्योंकि उस हालत में प्रायः उसे ठीक रूप में माना ही नहीं जा सकता।

दिनेश--हाँ, भैया जी ! आपका यह कहना तो ठीक है।

सुरेश--तब मेरे प्यारे दिनेश जी ! जो लोग यह कहते हैं कि राम और कृष्ण को, गीता और रामायण को, वेद और शास्त्रों को व्रत और उपवास को, दान और पुण्य को साधु-ब्राह्मण और गौ को तथा तीर्थ और त्यौहार को वे मानते हैं क्या वे इन सबका सही स्वरूप जानकर इनसे उचित लाभ लेना जानते हैं? क्या वे जानते हैं कि राम और कृष्ण कौन थे उनका सही स्वरूप क्या है ? वेद, शास्त्र उपनिषद् रामायण और गीता का हमारे जीवन के लिए क्या उपयोग है ? दान पुण्य का अभिप्राय क्या है ? साधु और ब्राह्मण कहते किनको हैं ! गौ पूजा का अर्थ क्या है ? तीर्थ का सत्य स्वरूप क्या है और त्यौहारों का स्वरूप और उनका लाभ क्या है? क्या वे जानते हैं कि श्रावणीपर्व हमें क्या सन्देश देता है, दशहरा का पर्व हमें क्या प्रेरणा देता है,दीपावली पर्व क्यों और किस लिए मनाना चाहिए तथा होली के पुनीत त्यौहार की संयोजना हमारी संस्कृति में हमारे ऋषियों ने किसलिए की थी ?

दिनेश--भैयाजी ! मेरा ख्याल है कि यह सब तो न कोई जानता है और न मानता ही होगा।

हमारे त्योहारों का उलटा रूप

(सुरेशजी अब कुछ भावावेश में आ गये थे) कहने लगे–प्रिय दिनेश जी शायद आपको भी विदित न हो श्रावणी (सलूने) का त्यौहार वेद और सत्शास्त्रों के 'श्रवण' सुनने-सुनाने और पढ़ने-पढ़ाने अथवा राष्ट्रोन्नति के लिए 'ज्ञान की आवश्यकता और ज्ञानीजनों (विद्वानों=ब्राह्मणों) के सम्मान का सन्देश लेकर हमारे बीच आता है पर हम देखते हैं ज्ञान का प्रतिनिधि कहलाने वाला–नामधारी ब्राह्मण आज जगह-जगह इस त्यौहार (पर्व) के दिन हाथ फैलाता फिरता है देश में शारीरिक 'बल' और वीरता की भावना जगानेवाला दशहरा का पवित्र त्यौहार गरीब बकरे या भैंसे की गर्दन पर छुरी फेरने के पापाचार और कायरता-प्रदर्शन के रूप में मनाया जाता है, दिवाली ! क्या कहूँ, तुम जानते ही हो देश को आर्थिक समृद्धि का सन्देशा देने वाला यह पर्व जुआ खेलकर दिवाली की जगह दिवाला निकालकर मनाते हैं, लोग ! और होली का त्यौहार जो संगठन और प्रेम का त्यौहार है,जो अपने नाम से ही बताता है कि साल के भीतर जो होली सो 'होली' उस पर धूल डालो नये वर्ष को प्रेम और सद्भावना से आरम्भ करो--वह 'दुश्मनी निकालने' और 'सिर फुटौअल'का त्यौहार बनकर रह गया है। क्या यही है इन त्यौहारों का मनाना ?

दिनेश—इस प्रकार तो इन त्यौहारों को लोग बिलकुल उलटा ही मनाते हैं। पर ऐसा क्यों हैं ?

सुरेश--प्रियवर, मैं वही तो बता रहा हूँ कि चूंकि हमारे लोग इन त्यौहारों के स्वरूप और महत्व को जानते ही नहीं। और जब जानते ही नहीं तो ठीक मना ही कैसे सकते हैं ?

राम और कृष्ण की उलटी मान्यता

इसी प्रकार श्री राम और कृष्ण की बात लीजिए। रामायण और महाभारत हमारे महान् इतिहास ग्रन्थ है राम और कृष्ण हमारे

महान् जातीत पुरुष, हमारे महान् पूर्वज, राष्ट्रपुरुष और युग निर्माता हैं। महापुरुषों का लाभ किसी देश को यह होता है, उनकी जयन्तियाँ हम इसलिए मानते हैं ताकि उनके चरित्रों का गुणगान करके, उनके अनुसार हम अपने जीवनों को बनायें। अँग्रेजी के एक प्रसिद्ध कवि हुए हैं—लौंगफैलो। उनकी एक कविता है–'सम आफ लाइफ'।

दिनेश–वह तो मैंने भी पढ़ी है, भैयाजी !

सुरेश–तो दिनेश जी ! उस कविता का यह पद आपने पढ़ा ही होगा—

Lives of great Men all remind us,
We can make our lives sublime,
And departing leave behind us,
Foot-prints on the sands of time.

अर्थात् महापुरुषों के जीवन हमें प्रेरणा देते हैं कि हम भी उन की तरह अपने जीवनों को पवित्र बना सकते हैं और समय की बालू पर (उन्हीं की भाँति पीछे आने वालों के लिए) पद-चिन्ह छोड़ सकते हैं। तो महापुरुष प्रकाश-स्तम्भ या प्रेरणा स्रोत का काम करते हैं। पर हमारे लोगों ने क्या किया—अपने इन महान् पूर्वजों को ईश्वर बनाकर उनको सजाकर देवालय में बिठा दिया, जैसे कुछ लोग आज गाँधीजी को ईश्वर बनाने में लगे हैं। जानते हो इससे कितनी बड़ी राष्ट्रिय हानि हुई ? आज जब किसी से कहा जाता है कि श्री राम या कृष्ण ने यह अच्छा काम किया, हम भी वैसे बनें, तो जानते हैं, ये तथाकथित रामभक्त या कृष्णभक्त क्या कहते हैं ? वे कहते हैं कि ऐसा बड़ा काम तो वे ही कर सकते थे। और दूसरी ओर उन्होंने इन महापुरुषों और देव-देवियों के साथ अनेक लांछन लगाकर अपने ही पापाचार के मार्ग खोले हुए हैं। आज हमारे लोग शिवजी के नाम पर भङ्ग पीते हैं काली देवी के नाम पर शराब पीते और माँस खाते हैं। श्री कृष्ण जी के नाम पर चोरी और दुराचार-व्यभिचार करते हैं। और वे सब करते हुए कहते क्या हैं ? जब भगवान् ने ही ये सब काम

किये तो करने हमारे में क्या दोष ? क्यों दिनेश जी, क्या यही है- श्री राम कृष्ण और देवी-देवताओं का मानना ? महापुरुषों के उत्तम आचरणों के अमल से छुट्टी लेना और उनके पवित्र जीवन के साथ घोर घृणित लांछन जोड़कर उनकी नकल करके उनका भक्त कहलाने का दम्भ भरना–यही तो मेरे महान् भारत के सर्वनाश का मूल है। महापुरुषों को ईश्वर बनाकर उनके चरित्र की पूजा की जगह, उनके चित्र की पूजा का पाप हमारे यहाँ चल रहा है। ❀ क्या इस प्रकार स्वयं अपने हाथों हम अपने पूर्वजों को मिट्टी नहीं कूट रहे ?

दिनेश–भैयाजी, आप बिल्कुल ठीक कहते हैं। लोग इसी रूप में आज श्रीराम कृष्ण और देवी देवताओं को मानते हैं। पर आज मैं समझ रहा हूँ, यह सब तो गलत और उलटा है।

साधु, ब्राह्मण और दान का उलटा स्वरूप

सुरेश-मेरे प्यारे दिनेश जी ! यही नहीं, न जाने कितनी बातें उल्टी हैं। सट्टा बताने वाले, गाँजे और सुलफा का दम लगाने वाले मुडचिरे, महा हठी और गालीयाँ बकने वाले लोग हमारे यहाँ 'साधु' कहलाते हैं। जो जितनी अधिक गालियाँ दे वह उतना ही पहुँचा हुआ और सिद्ध कहलाता है। ऐसे ही कुपात्रों को पैसा लुटाना और भंडारा करना 'दान' कहलाता है। कोरे निरक्षर भट्टाचार्य, प्याऊ पर पानी पिलाने वाले और लाला के लल्लू को कन्धे पर रख कर घूमने वाले 'महाराज' 'गुरुजी' 'पंडितजी' और 'ब्राह्मण' कहलाते हैं। हा, हन्त ! मेरे जगद्गुरु ब्राह्मण और सन्तों का यह स्वरूप !

दिनेश—भाई साहब ! मैं आपका बहुत ऋणी हूँ। अब आप तीर्थ, व्रत, गौ पूजा और मूर्ति पूजा के विषय में भी कुछ समझाइये।

❀ **रामायण तथा महाभारत रहस्य जानने के लिए श्री 'प्रेम' जी द्वारा प्रणीत 'रामायण : एक सरल अध्ययन, महाभारत : एक सरल अध्ययन' तथा 'शुद्ध कृष्णायन' अवश्य पढ़ें।**

तीर्थ और व्रत का सत्यार्थ

सुरेश—प्रिय दिनेश जी ! हमारा सबसे बड़ा दुर्भाग्य तो यह हुआ कि हम शब्दों के सत्यार्थ भूल गये। अनके शब्द तो दुरुपयोग के कारण अपनी मूल भावना (आत्मा) ही खो बैठे। जानते हो आज 'गुरु'—इस पवित्र शब्द का प्रयोग किसके लिए किया जाता है ? तो तीर्थ शब्द का सत्यार्थ है—'जनाः येन तरन्ति तानि तीर्थानि अर्थात् तारने वाले को, हमारा कल्याण करने वाले को तीर्थ कहते हैं, इस प्रकार सत्याचरण, अहिंसादि यम-नियमों का पालन, धैर्य-क्षमा आदि धर्म के लक्षणों को जीवन में धारण और माता-पिता, आचार्य विद्वान् ब्राह्मण तथा आदर्श सन्त महात्माओं की संज्ञा तीर्थ है और परमपिता परमात्मा तीर्थराज है। पर हमारे लोग गङ्गा-यमुना के पानी और हरिद्वार, मथुरा, काशी आदि स्थानों में ही तीर्थ बुद्धि कर बैठे। यों गङ्गा यमुना आदि का स्नान बड़ा अच्छा है। गङ्गा का जल तो महौषधि है। इनमें नहाने से शरीर स्वस्थ होता है। और स्वस्थ शरीर होने से मन स्वस्थ होता है। कभी इन नदियों के किनारे सदाचारी ऋषि मुनि रहते थे। स्वस्थ मन से यात्रीगण इन तीर्थ रूप सन्तों के सदुपदेश सुनते थे और सत्सङ्ग की गङ्गा में नहाकर दुर्गुणों को छोड़ने तथा सद्गुणों के ग्रहण करने का 'व्रत' लेते थे। यों उनके जीवन का कल्याण होता था। यही तीर्थ' और 'व्रत' का सत्यार्थ था। पर अब दिन भर भूखा रहने को कहते हैं 'वत्त' और शाम को करते हैं खूब 'भत्त'।

(रमेश और दिनेश दोनों खिल-खिलाकर हँस पड़े।)

गङ्गा-स्नान या पाप करने का लाइसेन्स ?

प्रिय दिनेशजी, इसी प्रकार गङ्गा-यमुना आदि के स्नान या उक्त स्थानों की यात्रा मात्र से समझते हैं कि इनसे सारे पापों का फल नष्ट हो जायगा। इस उलटी मति से होता क्या है ? ये लोग हर साल पाप करने के लाइसेन्स को 'रिन्यू' कराते रहते हैं। बाहर से देखने

में वे दुनियाँ के लोग समझते हैं कि तीर्थ यात्रायें खूब बढ़ रही हैं अर्थात् धम खूब बढ़ रहा है, पर परिणाम में पाप और दुराचार का बोल वाला हो रहा है, क्योंकि उनको बहकाया गया है कि पापों के दुष्फल को गङ्गा मैया बहा ले जाती है।

'पूजा' शब्द का रहस्यार्थ

प्रिय दिनेश जी ! 'पूजा' शब्द का सत्यार्थ भी हम भूल गये। पूजा का अर्थ है चेतन का यथायोग्य सत्कार और जड़ का यथायोग्य उपयोग। सूर्य की पूजा क्या है ? सूर्य के प्रकाश से स्वास्थ्य-लाभ लेना सूर्य के ताप से अपनी फसलें पकाना आदि। हमारे लोग सूर्य को खड़े होकर हाथ जोड़कर पानी देते हैं। कैसा विचित्र पूजन है, यह ! जल और अग्नि का पूजन किया वैज्ञानिकों ने, भाप के इन्जन तैयार कर लिये और हम सिर्फ उनके हाथ जोड़ते रहे। गौ का पूजन डेनमार्क और अमेरिका वालों ने किया। वहाँ की गायें ५०-५० किलो दूध देती हैं। हम गाय पर रोली चावल चढ़ाते रहे और 'गौ माता की जय बोलते रहे। हमारी गायें औसतन १॥-२ किलो दूध देती हैं और गलियों में विष्ठा खाती फिरती हैं। हाँ, सबेरे उठकर किसी गाय को छूकर माथे से लगाना हमने नहीं भूला। पर क्या यही है गौ पूजन ? इसी विचित्र गौ पूजन के कारण आज भी रोजाना हजारों गायें राम और कृष्ण की इस पवित्र धरती पर काटी जाती हैं !! गाय करुणा की प्रतिमा है। वह भगवान् की मूक प्रजा—पशु जगत् की प्रतिनिधि है। उसके उपकारों के प्रति कृतज्ञता और सेवा भाव में ही मनुष्य की मनुष्यता है। पर गौ हत्या बन्दी के साथ समस्त वैज्ञानिक साधनों से गौ माता का सम्बर्धन हो। वह दुधारू और आर्थिक दृष्टि से भी उपयोगी बने—यह है सच्चा गौ पूजन !

मूर्तिपूजा का अभिशाप

अब मूर्ति पूजा की बात लीजिए। इस सन्दर्भ में मैं एक प्रश्न करना चाहूँगा। दिनेश जी क्या कभी आपने विचारा है कि यह

ऋषि मुनियों का देश, 'सोने की चिड़िया' भारत देश, यह 'स्वर्गादपि गरीयसी' भारत माता जो कभी जगद्गुरु के आसन पर शोभित थी, इस प्रकार दीन-हीन और पद दलित हुई क्यों ? आखिर यह देश वह महान् जाति जिसके पास वेद, दर्शन उपनिषद् और गीता जैसा ज्ञान हो, जिसके पास रामायण और महाभारत जैसे इतिहास ग्रन्थ हों श्रीराम और श्रीकृष्ण भरत और हनुमान जैसे अपूर्व आदर्श जिसके पास हों,वह महान् देश,वह महान् जाति ऐसे अकल्पनीय पतन-पराभव और दुर्गति के खड्ड को क्यों कर प्राप्त हुए ? एक ही उत्तर है। इस सबका—हमने 'चरित्र पूजा' की जगह 'चित्र पूजा' के पाप को अपना लिया। उस चित्र पूजा का दूसरा नाम ही मूर्ति पूजा है। बस हमारे महान् देश की ऐसी घोर गरीबी, गुलामी तथा अनेकानेक दुर्गतियों की जड़ है मूर्ति पूजा। ❋

इसकी बड़ी लम्बी और दर्द भरी कहानी है। ईश्वर की तो कोई मूर्ति होती नहीं। इसलिए मित्र लोगों ने अपने महापुरुषों को ही ईश्वर बना डाला और महापुरुषों या देव पुरुषों—श्री राम, कृष्ण, महावीर, बुद्ध, हनुमान, शिव, गणेश आदि की मूर्तियाँ बनाकर उनकी पूजा आरम्भ कर दी। यहाँ 'पूजा' शब्द का दुरुपयोग हुआ। महा-पुरुषों के चित्र या मूर्ति रखना कोई बुरी बात हो, ऐसा नहीं। उनके गुणों की स्मृति के लिए आप चित्र रख सकते हैं, रखने चाहिए। उन चित्रों को आप शीशे में सजाकर रखें, उन पर से धूल आदि हटाते रहें। यही है उनका पूजन ! पर हमारे लोग तो पाखण्ड करते हैं–जो चित्र खाते नहीं, उनको खिलाने का दम्भ करते हैं और उनको-दिखा कर स्वयं ही खा जाते हैं। आरती उतारते हैं उनको, घण्टे-घड़ियाल बजाते हैं उन्हें (कुम्भ कर्णी निद्रा से) जगाने को। भगवान की प्यारी

❋ कुछ विशेष परिचय के लिए श्री प्रेम जी द्वारा लिखित-'दादी पोती की बातें अथवा भारत और मूर्ति पूजा' या 'मूर्ति पूजा एक सरल अध्ययन' अर्थात् 'मूर्ति पूजा' 'शङ्का समाधान' अवश्य पढ़ें।

प्रजा—मनुष्य जब भूख से छटपटा कर प्राण त्याग रहा होता है, इन मूर्तियों को मेवे और मिष्ठान्न तथा मनों दूध का भोग लगाया जाता है मानव को जब लज्जा ढकने तक को वस्त्र न हो–इन पीतल पत्थर या सोने चाँदी की मूर्तियों को रेशमी और मखमली वस्त्र पहनाये जाते हैं। अरे, और तो और इन ईश्वरों को मखमली बिछौनों पर सुलाया जाता है। और सबके अन्तर्हृदय में सतत जाग्रत परमात्मा को जगाने का पाखण्ड भी किया जाता है !

विचित्र रामभक्ति बनाम मूर्ति पूजा के दुष्फल

श्री राम ने भीलनी का आतिथ्य स्वीकारा था, निषाद को गले लगाया था, पर ये राम भक्त प्रभु के अमृत पुत्र मानव को 'अछूत' कहकर ठुकराते हैं। पतित पावन श्री राम ने शुद्धि और संगठन का बिगुल बजाकर वानर जाति और राक्षस जाति तक का सहयोग भी लिया था, पर ये राम भक्त (!) किसी को मिलाना तो दूर सबको दुरदुराना और निकाल फंकना ही अपनी उच्चता की निशानी मानते हैं। इन्हीं श्रीराम और कृष्ण के शत्रुओं ने ८ करोड़ अपने ही भाइयों को मुसलमान और एक करोड़ से अधिक को ईसाई बनाकर अपने ही हाथों पाकिस्तान बना डाला ! श्रीराम ने समुद्र पार करके लङ्का विजय की थी और ये राम भक्त (!) समुद्र यात्रा करने वालों को जाति बहिष्कृत करते हैं।

कैसे शोक का स्थल है कि लोग गीता और रामायण को सवारियाँ निकालते हैं, अखण्ड पाठ करते हैं। श्रीराम और श्रीकृष्ण के पवित्र नामों का अखण्ड कीर्तन करते हैं, पर आचारण से कोई भी सम्बन्ध नहीं। श्रीराम ने किसो मूर्ति के सहारे न बैठकर अपने वाणों और बाहुबल से रावण को जीता। इन्होंने मूर्ति के भरोसे बैठे रहकर इस विश्व विजयी महान् देश को गुलाम बना दिया और देश का सारा धन मंदिरों में एकत्रित करके उसको (पाखंडी और देशद्रोही ज्योतिषियों के छल का शिकार बन) लुटवा दिया। प्रियवर दिनेश

जी ! मूर्तिपूजा के दुष्फलों को कहाँ तक गिनाया जावे।

मूर्तिपूजा का सत्यार्थ

हाय रे दुर्भाग्य ! इस तरह मूर्ति पूजा के छलावे में सच्ची ईश्वर भक्ति तो हमसे छूट ही गई, उसका लाभ तो हमें मिल ही नहीं सका, पर मूर्ति पूजा का अर्थ भी हमने उलटा ही समझा। ईश्वर तो अमूर्त है पर माता पिता, सास-श्वसुर, गुरुजन, विद्वान् ब्राह्मण और सच्चे सन्त महात्मा—ये तो सब मूर्तिमान् है। इन सबकी पूजा अर्थात् इन की सेवा सुश्रूसा और आज्ञा पालन को ही यदि 'मूर्तिपूजा' माना होता तो भी ठीक था, पर यहाँ तो मूर्ति पूजा के नाम पर भी जड़ पूजा (जड़ की चेतन के समान पूजा) करके सर्वनाश ही कर डाला।

और तर्पण का सत्यार्थ

प्यारे दिनेश जी, इसी प्रकार 'श्राद्ध और तर्पण' इन शब्दों का सत्यार्थ भी भुला दिया गया। श्राद्ध का अर्थ है माता-पितादि गुरुजनों की श्रद्धापूर्वक सेवा करना और तर्पण का अभिप्राय है अपने सदाचरण और सेवा से उन्हें तृप्त करना। हम सभी जानते है कि यह जीवित रहते ही सम्भव है। पर यहाँ क्या उलटा क्रम अपनाया—

जियत पिता से दंगम दंगा। मरे पिता पहुँचाये गंगा।

परिणाम ? जीवन काल में जिन माता-पितादि को दो घूँट पानी भी नहीं पिलाया मरने के बाद उनके नाम पर मृतक भोज, गोदान, शैया दान होता है—कर्जे ले लेकर ! इतना ही नहीं हर वर्ष क्वार के महीने में उनके नाम पर निरक्षर भट्टाचार्य पोपों के पेट में इमरतियाँ ठूँसी-जातीं तथा खीर और रबड़ी उँढ़ेली जाती है।

सत्यार्थ के लिये सत्यार्थप्रकाश

तो प्रियवर ! ऋषि दयानन्द ने इन सबका भूला हुआ सत्यार्थ हमें फिर से बताया। इसी के लिए उन्होंने अपना अमर ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश बनाया। अब आपने समझा कि राम कृष्णादि को कौन मानता

है कौन नहीं मानता ? कौन सही मानता है और कौन उलटा ?

ऋषि दयानन्द ने उलटे को उलटा

दिनेश–भैयाजी, सच में यह तो सभी कुछ उलट गया। पर आश्चर्य है लोग कहते हैं स्वामी दयानन्द ने सब उलट दिया, और उलटी राह चला दी।

सुरेश–लोगों का इतना कहना तो ठीक ही है कि ऋषिवर दयानन्द ने सब उलट दिया। पर वे यह भूल जाते हैं कि स्वामी जी ने उलटे को उलटा अर्थात् सीधा किया। ५००० साल पहले जो धर्म का सत्य सरल और सीधा स्वरूप था,हमारे लोगों के अज्ञान,आलस्य और स्वार्थ से बाद में वह उलट गया था, उसी को स्वामीजी ने उलट कर फिर से उसे सही किया। फिर हमें भूली हुई वैदिक डगरिया बताई। श्रीराम कृष्ण आदि महापुरुष, गौतम कपिल कणाद पतंजल व्यास, जैमिनि आदि ऋषि महर्षि जिस धर्म को मानते थे, जिस सर्व व्यापक निराकर एक ईश्वर की उपासना करते थे, जिस जातीय 'आर्य' नाम से पुकारे जाते थे, आपस में मिलते समय जिस एक अभिवादन 'नमस्ते' का प्रयोग करते थे, जिस एक धर्म ग्रन्थ वेद' के भक्त थे और जिस एक गुरु मन्त्र गायत्री का आचरण करते थे, यह सब कुछ बीच में उलट गया था। स्वामी जी ने उलटे को उलट कर सीधा करके हमें फिर से सत्य वैदिक राह पर लाकर खड़ा किया।

रमेश की रखी टाइमपीस को उठाकर सुरेश ने कहा—देखो दिनेश जी, यह घड़ी है, सीधी रखी थी। किसी धक्के से यह उलट गयी उलटी पड़ी रही काफी समय तक इस बीच में इसे देखने वालों ने समझा कि यही घड़ी की सही हालत है। तभी एक जानकर आया, क्या किया उसने ? उसने उलटो घड़ी को उलटा अर्थात् सीधा किया, साधारण बुद्धि वाले चिल्लाये–यह तो घड़ी को उलट रहा है, पर विचारशीलों ने देखा और समझा कि उसने घड़ी को सीधा कर दिया है। अतः वे उसका गुणगान करने लगे ।

दिनेश–भैयाजी ! तब तो स्पष्ट है कि श्री राम-कृष्ण, गीता-

रामायण साधु-ब्राह्मण, दान-पुण्य, तीर्थ-व्रत, श्राद्ध-तर्पण, आदि को आर्यसमाज भी मानता है।

सुरेश—प्रिय दिनेश जी, अभी आप भूल रहे हो। आर्यसमाज भी मानता है, ऐसा नहीं। आर्यसमाज ही मानता है। ऐसा कहो !

दिनेश—हां, ठीक है। भैयाजी, मैं भूल रहा हूँ। अच्छा तो आप इतना और बताने की कृपा करें कि इन सब बातों के आर्यसमाज के मानने और अन्यों के मानने में क्या भेद है ?

श्रद्धा और विवेक का समन्वय

सुरेश—(हँसते हुए) प्रिय दिनेश जी ! आश्चर्य है, अभी तक आप इस बात को भी नही पकड़ पाये। देखो बन्धु आर्यसमाज का कहना है कि इन समस्त सत्य तत्वों के सही रूप को पहले जानो, तब मानो। इसका अर्थ है उन्हें विवेक पूर्वक मानो। ज्ञान और बुद्धि-पूर्वक मानो। इस तरह से मानो जिससे अपना अपने परिवार का अपने अड़ोस-पड़ोस का, अपने देश जाति का और विश्व का कल्याण हो सके।

प्रियवर श्रद्धा बड़ी उत्तम वस्तु है, वह जीवन का रस है आनन्द का स्रोत है पर कब ? जब उसके साथ विवेक (ज्ञान) का सहचार हो। ब्राह्मण, साधु और कुल पुरोहितों का दायित्व है, उनका पुनीत कर्त्तव्य है कि मनुष्य के सोये हुए विवेक को सत्योपदेश से जगायें और उसे उसके अन्तर की श्रद्धा के साथ जोड़ें। श्रद्धा और मेधा का यह समन्वय (संगम) ही मानव जीवन का मोक्ष-तीर्थ है। पर यही श्रद्धा जब सद्विवेक(सद्ज्ञान) से दूर रहती या रखी जाती है तो वह 'अन्ध श्रद्धा' बन जाती है विश्वास अन्ध विश्वास बन जाता है।

अति श्रद्धा का परिणाम भी अन्ध श्रद्धा होता है।

श्रद्धा जितनी कल्याण कारिणी है अन्ध श्रद्धा उतनी ही भयानक है, विश्वास जितना सुखद है। अन्ध विश्वास उतना कष्टकर है

फिर जब भोली जनता की अन्धश्रद्धा को उभारकर समाज के कुछ स्वार्थी और चालाक तत्व उसके साथ अपने पेट के धन्धे का प्रश्न जोड़ देते हैं तब तो यह और भी सर्वनाशी बन जाती है।

आर्यसमाज सम्पूर्ण मानव समाज को अन्धश्रद्धा के गढ़े से निकालकर मानव की श्रद्धा के साथ विवेक जोड़ना चाहता है। कहना चाहिए कि आर्यसमाज के सम्पूर्ण आन्दोलन की आत्मा है–सद्विवेक का जागरण। कोई नई स्थापनायें नहीं, कोई नई मान्यतायें नहीं। सत्य तो शाश्वत और सनातन है। श्रद्धा के आधार तत्वों को उखाड़ना नहीं किन्तु जो तत्व झूठ पाखण्ड और चमत्कारों का सहारा लेने के कारण आज के विज्ञान और प्रकाश के युग में उखड़ रहे हैं उन्हें विवेक के साथ जोड़कर सत्याश्रित करके उन्हें जमाना है।

हमारा गुरु मन्त्र गायत्री क्यों ?

प्रिय दिनेश जी ! क्या आप बता सकेंगे हमारा गुरु मन्त्र क्या है ?

दिनेश—वह तो 'गायत्री मन्त्र' है। और वह मैं सुना भी देता हूँ–

ओ३म् भूर्भुवः स्वः। तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि।
धियो यो नः प्रचोदयात्।

सुरेश—वाह ! बहुत धन्यवाद ! पर क्या आप यह भी जानते हैं कि इस गायत्री मन्त्र का सन्देश क्या है उसकी आत्मा क्या है उसमें भक्त भगवान् से क्या माँगता है ?

दिनेश— वह तो आप ही समझायें।

सुरेश–देखिये, इस मन्त्र में भक्त और कुछ न माँगकर सद्बुद्धि या सद् ज्ञान (सद् विवेक) की याचना करता है। हाथी के पाँव में जैसे सबका पाँव उसी प्रकार सद्ज्ञान की याचना करके मानो भक्त सब कुछ माँग लेता है। अपने हर कार्य और हर स्थिति के साथ ही सद्विवेक को जोड़ अपूर्व सफलता प्राप्त करेगा। इसी से तो गायत्री

मन्त्र को 'गुरु मन्त्र' कहा है। यह गायत्री मन्त्र या गुरु मन्त्र ही आर्य समाज के आदोलन का प्राण है। हम राम और कृष्ण को मानें पर एक शर्त के साथ—वह है, विवेक पूर्वक। हम गीता और रामायण पढ़ें पर विवेक पूर्वक, हम गङ्गा और यमुना में नहायें पर विवेक पूर्वक, हम दान-पुण्य करें पर विवेक पूर्वक, हम साधु-ब्राह्मण, व्रत तीर्थ, श्राद्ध-तपर्ण, गौमाता सबको मानें पर विवेक पूर्वक। दूसरे लोग अन्धे होकर इन सबको मानते और पेट का प्रश्न इनके साथ जोड़कर दूसरों को भी अन्धा बनाने का पाप करते हैं, आर्यसमाज इन सबको श्रद्धा के साथ विवेक पूर्वक मानता और मनवाता है, जिससे ये सब हमारे कल्याण का कारण और आधार बनें। यही अन्तर है दूसरों के मानने तथा आर्यसमाज के मानने में।

दिनेश—भाई सहाब, बहुत-बहुत धन्यवाद !

जय ज्ञान : जय जवान . जय किसान

सुरेश—इस सम्बन्ध में थोड़ा और। आप जानते हैं हमारे पिछले प्रधान मन्त्री स्व० लालबहादुरजी शास्त्री ने देश को एक नारा दिया था।

दिनेश तुरन्त बोल उठा—'जय जवान जय किसान।'

सुरेश—ठीक ! प्रियवर यदि आप 'छोटे मुँह बड़ी बात न समझें तो " तो हमारा कहना है कि यह नारा अधूरा है।

दिनेश—सो कैसे, भैया जी ?

सुरेश-देखो दिनेश जी ! 'जवान की जय' का अर्थ है देश की क्षत्रिय-शक्ति या सेना की जय और 'किसान की जय' का अर्थ है। देश की फसल या धन अथवा वैश्य शक्ति की जय ! पर जब तक ब्राह्मण शक्ति की जय न हो तब तक न क्षात्रशक्ति की जय सम्भव है, न वैश्य शक्ति की। क्षत्रिय अन्याय को मिटाता है और वैश्य (किसान। अभाव को, पर जब तक अज्ञान नहीं मिटेगा तब तक न अन्याय मिटेगा, न अभाव। हमारे देश में अज्ञान आ जाने से ही

हमने अन्यायों को सहा, गुलाम बने और गरीबी को खरीद लिया। अज्ञान को मिटायेगा ब्राह्मण। आर्यसमाज अपने स्वरूप से ब्राह्मण संगठन है। वेद प्रचार अथवा अज्ञान नाश या सद्विवेक का जागरण ही उसका कार्य है। अतः हमारा पूरा नारा होना चाहिये !

"जय ज्ञान, जय जवान, जय किसान"

आर्य समाज का उद्घोष है— **'जय ज्ञान जय विवेक'** गायत्री मन्त्र में यही सन्देश निहित होने से गायत्री हमारा गुरु मन्त्र या ध्येय मन्त्र है। स्पष्ट है कि आर्य समाज राष्ट्र धर्म है और कि आर्यसमाज का सम्पूर्ण कार्य-कलाप ही राष्ट्र निर्माण की आधार शिला है।

: ३ :

दिनेश—धन्य-धन्य भ्राताजी, आपने तो भ्रम और भ्रान्ति के बादलों को छिन्न-बिच्छिन्न कर दिया। अच्छा, अब एक प्रश्न यह है कि कुछ लोग ऐसा कहते हैं कि आर्य समाज के विचार तो अच्छे हैं, पर वह दूसरों को खण्डन करता है, यह ठीक नहीं है। इसका क्या समाधान है ?

खण्डन, मण्डन (निर्माण) की भूमिका

सुरेश—प्रियवर, इतने विचार-विमर्श के पश्चात् तो इस प्रश्न का उत्तर आपको स्वयं ही मिल जाना चाहिए था। आपने देखा भी होगा कि हमने खण्डन तो अब भी किया ही है, पर उसका लक्ष्य क्या है—मण्डन या निर्माण ! ठीक है न ? प्रिय सुरेशजी याद रखो कि खण्डन, निर्माण की भूमिका है।*

टेलर कपड़े बनाता है पर किसी भी वस्त्र के निर्माण के पूर्व पहले वह कैंची द्वारा कपड़े का खण्डन ही करता है,माली उचित दिशा

* इस रहस्य की जानकारी के लिये श्री 'प्रेम जी' कृत 'दादा पोते की बातें' अवश्य पढ़ें।

में पौधे को वृद्धि केलिए काट छाँट करता है, माँ बच्चे को और आचार्य शिष्य को सन्मार्ग पर लाने के लिए ताड़ना करते हैं । भवन बनने से पहले नींव खोदने के रूप में फावड़े से भूमि का खण्डन होता है । आभूषण बनने से पहले स्वर्णकार सोने को गलाता, औषधि या चूर्ण के रूप में आने से पहले कोई वस्तु कूटी-पीसी और छानी जाती है । कुँये का गन्दा जल निकाल देने पर उसके अवरुद्ध स्रोत खुलते और शुद्ध जल कुँए में भरता है । किसान निराव करता है और निरर्थक वस्तुओं को निकाल फेंकता है ताकि वे पौधौं की खुराक न खा सकें और पौधों की उचित वृद्धि हो सके । तुलसीदास ने भी लिखा है– 'कृषी निराबहिं चतुर किसाना ।' बस, आर्यसमाज वही चतुर किसान का कर्तव्य निभाता है । सत्य धर्म के नाम पर बनी निरथक रूढ़ियों और अन्धश्रद्धा के घास-पात को वह निकाल फेंकता है, ताकि राष्ट्र जीवन में सत्य-धर्म रूपी पौधे फल-फूल सकें और राष्ट्र को खेती हरी भरी रह सके ।

एक वैद्य या डाक्टर जैसा काम है आर्यसमाज का—

वैद्य कड़वी दवा देता है, रोगी को । रोगी नहीं लेना चाहता, पर वैद्य उसे गालियाँ खाकर भी जबरन पिलाता है । क्यों ? रोगी के हित के लिए । डाक्टर आपरेशन करता है, जरूरत समझता है तो किसी अङ्ग को बिल्कुल काट कर अलग कर देता है ? रोगी चीखता है, चिल्लाता है, गालियाँ देता है, पर डाक्टर अविचलित भाव से रोगी की गालियों पर क्रोध न कर अपना कठोर कर्तव्य निभाता है । वैसा ही यह खण्डन रूप कठोर कर्तव्य है, जिसे आर्यसमाज एकमेव समाज या राष्ट्र रूप रोगी की सम्पूर्ण स्वस्थता के विचार से करता है ।

खण्डन एक महान् यज्ञ : खण्डन की पात्रता—

यह खण्डन-कर्म बड़ा कठोर कर्तव्य होने से हर किसी के वश की बात नहीं । जो लोग सिर्फ खण्डन के लिए खण्डन करते हैं दूसरों

को महज नीचा दिखाने या किसी का दिल दुखाने की दुष्ट वृत्ति से इस पवित्र यज्ञ कर्म (सबसे महान् राष्ट्र सेवा) को हाथ लगाते हैं, वे महा पामर हैं। वे नीच इस यज्ञ के एक क्षण के लिए भी अधिकारी नहीं हैं। ऐसे तथाकथित आर्यसमाजी (जो आर्यसमाज में कलङ्क रूप हैं, वे आर्यसमाजी हैं ही नहीं) जो स्वयं "लोप लीला" के अपराधी हैं, सत्यार्थ प्रकाश के प्रथम दश समुल्लासों को जिन्होंने ताला ठोक रखा है, आर्यसमाज के दश नियमों, पञ्च महायज्ञों और यम-नियमों के पालन से जिनका कोई सरोकार नहीं है, ऐसे देव दयानन्द के वास्तविक हत्यारों को खण्डन रूप राष्ट्र-निर्माण या मानव निर्माण के महा-यज्ञ में भाग लेने का कोई अधिकार नहीं है।

खण्डन कौन नहीं करता ?

फिर एक बात और कि हर समाज सुधारक ने अपने-अपने समय में अपनी बुद्धि के अनुसार समाज रूप रोगी की चिकित्सा करते हुए खण्डन के पवित्र अस्त्र का उपयोग किया है। बुद्ध, महावीर, ईसा मुहम्मद, नानक, कबीर, दादू, आखिर कौन है जिसने खण्डन को नहीं अपनाया ? हाँ, इतना ही अन्तर है कि ऋषि दयानन्द की चिकित्सा शास्त्रीय थी, वह प्रभु के अमर काव्य—ईश्वरीय ज्ञान वेद (जिसका पीछे विचार कर चुके हैं) पर आधारित थी। अतः उन्हें इन सम-सामयिक चिकित्सकों (अपनी बुद्धि और विद्या पर ही आधारित चिकित्सा करने वालों) की भी चिकित्सा का दुष्कर कार्य हाथ में लेना पड़ा। इसीलिए सत्यार्थप्रकाश के अन्त में चार समुल्लास उन्होंने लिखे। पर उसके पीछे वही चतुर किसान की भावना, सम्पूर्ण मानव समाज की कल्याण कामना और डाक्टर की भाँति की रोगी के प्रति कारुण्य भावना ही अन्तर्निहित है।

: ४ :

आर्यसमाज और विभिन्न मतवादी—

दिनेश—भाई सहाब मैं तो कृतार्थ हो गया हूँ। आपने तो

इस शङ्का का भी बड़ी उत्तमता से समाधान किया है। अब बस एक शङ्का और है कि क्या आर्यसमाज हिन्दुओं का रक्षक और ईसाई मुसलमानों का शत्रु है ?

सुरेश–यह भी बड़ा विचित्र भ्रम है। आर्यसमाज आर्य जाति और वैदिक संस्कृति का रक्षक है, यह तो ठीक है,पर मानव मात्र का हितैषी आर्यसमाज किसी का भी—शत्रु है, यह सर्वथा असत्य और भ्रामक है। हां, यह भी ठीक है कि अपने को हिन्दू कहने वाले भाई वास्तव में आर्य ही हैं। चूँकि वे वेद को ईश्वरीय ज्ञान मानते हैंवैदिक दर्शनों और उपनिषदों में निष्ठा रखतेहैं तथा जिनका जीवन वैदिकधर्म या मानव-धर्म की क्रियात्मक व्याख्या ही है—ऐसे श्रीराम और कृष्ण को वे मानते हैं। (यद्यपि यह सब उलटे रूप में मानने लगे हैं तो भी किसी प्रकार मानते हैं) वैदिक यज्ञों तथा अष्टांग योग विधि में भी श्रद्धा रखते हैं (भले ही उलटे रूप में सही पर उसे अपना मानते हैं)। इसी से स्वभावतः वे आर्यसमाज के निकट हैं। आर्यसमाज भी बौद्धों और सिक्खों आदि की तरह से अपने को हिन्दू समाज से अलग करके किसी नये पन्थ या मत का अनुयायी नहीं मानता। आर्यसमाज का विचार है कि बीच के अँधेरे के समय में सत्य वैदिक राह के छूटजाने और पुराणों के नाम से बिल्कुल नये गपोड़ा ग्रन्थ चल पड़ने से आर्य जाति का स्वरूप और मान्यतायें सभी कुछ उलट गये हैं। उन्हें सद्-विवेक के जागरण द्वारा फिर से मत-मतान्तरों की पगदण्डियों से लौटाकर वैदिक राजमार्ग पर लाया जावे। पौराणिक पन्थों का खंडन भी इसी आत्मीयता और दर्द को लेकर आर्यसमाज करता है,साथ ही आर्य जाति के हितों पर कोई आक्रमण करे तो आत्म-रक्षा की पवित्र भावना से (बैर बुद्धि से नहीं) आर्यसमाज उसका प्रतिकार भी अपना कर्तव्य समझता है। आर्य जाति पर यदि कोई आंच आये तो आर्य-समाज ही आगे बढ़कर लोहा लेता है—हैदराबाद सत्याग्रह, शिव-मन्दिर सत्याग्रह, हिन्दी रक्षा सत्याग्रह, गौरक्षा सत्याग्रह आदि इसके

हरा भरा था। अपने फलों और मनोहरता के लिए वह दूर-दूर तक विख्यात था। पर समय का फेर! मालियों की असावधानी से यह वाटिका सूखने लगी। चारों ओर की बाड़ या बाउण्डरी भी टूट कर नष्ट हो गई। बाहर से जङ्गली जानवर भी वाटिका में प्रवेश करने लगे और उसे निर्द्वन्द्व होकर चरने तथा निर्दयतासे उजाड़ने लगे। बहुत समय के बाद ईश्वर की दया हुई। अपनी वाटिकाको यों निर्दयता से उजड़ते देख एक माली की कर्त्तव्य-भावना जगी उसने अपना सोटा संभाला और जङ्गली जन्तुओं को ललकारा। वे भाग खड़े हुए तब उस माली ने वाटिका के चारों ओर बाड़ भी उसकी सुरक्षा के लिए लगा दी। अब उस वाटिका के सुरक्षित हो जाने पर वे जङ्गली जन्तु उस बाड़ और माली को कोसें, बुरा बतायें और गालियाँ निकालें तो स्वाभाविक ही है। प्रिय दिनेश जी, आर्य जाति रूपी वाटिका की दुर्दशा देखकर ऋषिराज दयानन्द रूपी माली ने जो आर्यसमाज की बाड़ लगा दी है, ईसाई या मुसलमान मित्र उसे बुरा बतायें तो यह उनका भोलापन होते हुए भी अस्वाभाविक और बहुत आश्चर्यकारक नहीं है, क्योंकि आर्य जाति को जिस निर्द्वन्द्वता और निर्दयता से वे चर रहे थे, उस पर रोक लग गई है।

'कृतघ्नस्य नास्ति निष्कृतिः'

प्रियवर! आश्चर्य महादाश्चर्य तो यह है कि जिनकी रक्षा और हित में महर्षि दयानन्द से लेकर लेखराम, स्वा० श्रद्धानन्द, लाला लाजपतराय जैसे सैकड़ों धर्मवीर नर-रत्न बलिदान हो गये, वे भी आर्यसमाज को अपना शत्रु कहते हैं और बुरा बताते हैं।

दिनेश—भ्राताजी! आपका आशय हिन्दुओं से है न? पर हिन्दू जनता तो अब आर्यसमाज के महान् उपकार को समझने लगी है।

सुरेश—प्रियवर! यह ठीक है कि आम हिन्दू जनता अब धीरे-धीरे आर्यसमाज और देव दयानन्द के महतोमहान् उपकार तथा आर्य-वीरों के बलिदानों के मूल्य को कुछ-कुछ समझने लगी है। पर आज

भी हिन्दू जनता ने अपनी बागडोर जिन स्वार्थी और पेटू धर्म-ध्वजियों के हाथों में सौंप रखी है वे पामर तो आर्यसमाज को तुम्हारे पूर्व प्रश्न के अनुसार आज भी नास्तिक कहते और भ्रम फैलाते हैं। क्या अभी-अभी काशी शास्त्रार्थ शताब्दी का समाचार आपने पत्रों में नहीं पढ़ा ? प्रसन्नता की बात यही है कि जनता अब इस भ्रांति-जाल से निकल कर मित्र और शत्रु को पहिचानने लगी है। यद्यपि 'चोर चोर मौसेरे भाई' के अनुसार मुल्ला, पादरी, पोप-पण्डे अपनी स्वार्थ-हानि के कारण आर्यसमाज का विरोध करते रहते हैं, पर वे याद रखें–**'कृतघ्नस्य नास्ति निष्कृतिः'** कृतघ्नी (गुनमेटा) का कभी कल्याण नहीं होता। तो सत्य यह है कि आर्यसमाज सर्व हितैषी है।

दिनेश—भैया जी, मैं आपका बहुत-बहुत आभारी हूँ। मैं अब भली भाँति समझ गया कि आर्यसमाज तो सर्व हितैषी है, सर्व मित्र है, उसकी शत्रुता किसी से नहीं है।

आर्यसमाज—मानव निर्माण आन्दोलन

सुरेश—यह तो है ही कि आर्यसमाज मानव मात्र और प्राणि-मात्र का मित्र है, किन्तु आर्यसमाज की शत्रुता भी पाप से, पाखण्ड से तथा अज्ञान-अन्याय और अभाव से अवश्य है। इनमें भी आर्यसमाज का शत्रु नं० १ है–अज्ञान ! क्योंकि अज्ञान ही सम्पूर्ण दम्भ और दुरितों का मूल है : अज्ञान या जहालत जहाँ भी हो संसार के जिस कोने में भी हो जिस ग्रन्थ, सम्प्रदाय या राजनैतिक दल में भी हो मानव-कल्याण की भावना से आर्यसमाज उसका विरोध करेगा।

प्रिय दिनेश जी, ध्यान रखो कि आर्यसमाज की लड़ाई न ईसाई से है, न मुसलमान से और न पौराणिक से। आर्यसमाज की लड़ाई है सिर्फ अज्ञान से, अविद्या से। आर्यसमाज इन मत पन्थों या इनके मजहबी ग्रन्थों की सिर्फ उन्हीं मान्यताओं का खण्डन करता है जो अज्ञान युक्त हैं। जिनके द्वारा मनुष्य मनुष्य न रह कर दनुज या दानव बन जाता है। धर्म वे ईश्वरीय सत्य नियम हैं जो

इस हाड़ चाम के मनुष्य को सही अर्थों में मनुष्यता से युक्त 'मानव'-बनाते हैं। पर अज्ञानी और स्वार्थियों के हाथों में पड़ जब यही धर्म मनुष्यता की हत्या करने लगता है तो आर्यसमाज अपने खण्डन खड्ग को लेकर आगे आता है। धर्म के नाम पर छूआछूत ऊँच-नीच की भावना का समर्थन धर्म के नाम पर दुराचार व्यभिचार और भ्रष्टाचार का पोषण, धर्म के नाम पर विज्ञान, बुद्धिवाद और तर्क तथा सृष्टि नियमों का विरोध और अन्ध-श्रद्धा का अनुमोदन, धर्म के नाम पर शराब-मांसा-हार, मूक पशुओं और मनुष्यों तक की बलि, धर्म के नाम पर गप्पों और चमत्कारों का बोलबाला, धर्म के नाम पर मतान्ध होकर अपने से भिन्न विचार वालों पर तलवार का प्रयोग,धर्म के नाम पर स्त्री जाति का अपमान किसी किसी के द्वारा तो उनमें आत्मा तक का न माना जाना, धर्म के नाम पर बहुदेवतावाद, पैगम्बरवाद, अवतारवाद, मृतक श्राद्ध, जन्मगत जात-पात फलित ज्योतिष और न जाने कितनी कितनी सामाजिक कुरीतियाँ और रूढ़ियों का प्रचलन—ये सब मनुष्य को मनुष्यता से दूर ले जाने या मानव को चरित्रहीन बनाने वाले दुर्गुण हैं। आर्यसमाज सिर्फ इन्हीं का खण्डन करता है। इन मत पन्थों में भी जो-जो बातें मानयता या सच्चरित्रता की पोषक हैं, आर्यसमाज उनका समर्थक है।

विविध मत पन्थों में जो-जो बातें सबके अनुकूल, प्राणि मात्र की हितकारी और सार्वकालिक सत्य के रूप में हैं, उन सबको यदि एकत्रित करलें तो उसी का नाम है—वैदिक धर्म या सत्य सनातन धर्म। अतः वैदिक धर्म सब उत्तमताओं का केन्द्र है। कहना चाहिए कि सब मत पन्थों के दीपकों में पाये जाने वाली कुछ-कुछ अच्छाइयों का प्रकाश वेद सूर्य से ही हुआ है। वैदिक सत्य धर्म के प्रचार प्रसार और आचरण द्वारा मनुष्य को पशुतासे हटाकर सच्चा मनुष्य बनाना ही आर्यसमाज का लक्ष्य है। इसीलिए मैंने कहा था—आर्यसमाज मानव निर्माण आन्दोलन या चरित्र निर्माण आन्दोलन है।

सत्य सनातन धर्म का अभिप्राय

दिनेश—भ्राताजी ! आपने वैदिक धर्म को सत्य सनातन धर्म कहा है । यहाँ सनातन धर्म के-पूर्व 'सत्य' शब्द के प्रयोग से आपका क्या अभिप्राय है ?

सुरेश—प्रियवर,बहुत ही अच्छा प्रश्न है. आपका ! देखो ! अब से ५०-६० साल पहले जब बाजार में नकली घी नहीं था तो सब लोग घृत (घी) के लिए केवल घृत शब्द का ही प्रयोग करते थे । पर जब बाजार में नकली (डालडा आदि घी) आ गया तो अब असली घी बेचने वाले घृत के पूर्व 'शुद्ध'शब्द प्रयोग करते हैं । इसी प्रकार शुद्ध या खालिस दूध, शुद्ध, मधु (शहद) और शुद्ध तेल आदि का प्रयोग होता है–ये चीजें नकली चल जाने के कारण । सनातन धर्म में भी पौराणिक दुराचार और वामाचार की मिलावट होने से वह जब नकली हो गया तो वेदोक्त सत्य धर्म को उससे अलग करने के लिए ऋषि दयानन्दने 'सत्य' सनातन धर्म का प्रयोग किया ।

आर्यसमाज के कार्य एवं प्रचार-साधन एक दृष्टि में

दिनेश—भैयाजी, बहुत ठीक । अत्यधिक उपकृत हूँ । अच्छा अब आप यह और बताने की कृपा करें कि अपने इस मानव-निर्माण आन्दोलन को अथवा मानवता की सेवा के अभियान को आर्यसमाज किन साधनों द्वारा चला रहा है ?

सुरेश—बहुत अच्छा प्रश्न किया है दिनेश जी, आपनें । देखिये आर्यसमाज एक वैचारिक क्रांति का नाम है, जिसका आधार है परम प्रभु की कल्याणी वाणी वेद ! वेद-प्रचार आर्य जनों का परम धर्म है और इसी के द्वारा वह मानव निर्माण के रूप में मानवता की सर्वोत्तम सेवा करना चाहता है ।

वेद प्रचार के दो ही मुख्य साधन है—१. प्रेस २. प्लेटफार्म । प्रेस का अर्थ है–वेद और वैदिक साहित्य का बड़ी मात्रा में प्रकाशन

और प्रचार । इस कार्य के व्यापक महत्व को स्वयं ऋषि दयानन्द ने सबसे अधिक समझा था । उन्होंने इसी कार्य के लिए परोपकारिणी सभा का निर्माण किया और इसे अपनी उत्तराधिकारणी बनाया । * इस सभा ने वैदिक यन्त्रालय द्वारा वेदों और वैदिक साहित्य का प्रकाशन किया । इसके अतिरिक्त अन्य पचासों वैयक्तिक एवं संस्थागत प्रकाशन केन्द्रों के द्वारा वैदिक साहित्य का बड़ा सुन्दर प्रकाशन कार्य हो रहा है । इन्हीं प्रकाशन केन्द्रों तथा प्रान्तीय सभाओं और गुरुकुलों द्वारा लगभग ५० मासिक, साप्ताहिक एवं पाक्षिक पत्र भी प्रकाशित हो रहे हैं । अनेकों आर्यसमाजों ने भी प्रकाशन कार्य में अपूर्व उत्साह दिखाया है । स्वामी दर्शनानन्द और अमर शहीद पं० लेखरामजी का कार्य तो इस दिशा में बेमिसाल है ।

प्लेटफार्म द्वारा प्रचार की व्यवस्था सार्वदेशिक आ० प्र० सभा के आधीन बनी प्रान्तीय सभाओं और जिला सभाओं के व्यापक सङ्गठन द्वारा आर्यसमाज के साप्ताहिक अधिवेशनों, पारिवारिक सत्संगों विविध जयन्तियों, पर्वों, वेद कथाओं, यज्ञ समारोहों, योग शिविरों और वार्षिक उत्सवों के माध्यम से होती है । विद्वान् उपदेशक तथा महात्मागण एवं आर्य नेता इस विषय में निरन्तर यत्नशील रहते हैं ।

आर्यसमाज चाहता है कि देश के बालक वीर ब्रह्मचारी और सदाचारी बनें । देश के युवक श्रीराम, श्रीकृष्ण और महावीर हनुमान जैसे आदर्श हों । देश की मातायें सीता सावित्री जैसी धर्मपरायणा और गार्गी जैसी विदुषी बनें । इस पुनीत भावना से ही उसने बालक-बालिकाओं के अनेकों गुरुकुल और सैकड़ों शिक्षा संस्थाओं का संचालन किया हुआ है । आर्यसमाज का अपार धन और शक्ति इस कार्य में लगे हैं । गौरव की बात है कि उत्तर भारत में गैर सरकारी

---

* **खेद है, यह सभा प्रचुर मात्रा में वैदिक साहित्य के प्रकाशन के स्थान पर मकान और दुकान बनाने में लगी है । इसे तो पौराणिक गीता प्रेस, गोरखपुर से भी बहुत आगे होना था ।**

शिक्षा संस्थाओं में आर्यसमाज का प्रथम स्थान है। कई उपदेशक विद्यालय भी हैं। न केवल देश में वरन् विदेशों में भी आर्यसमाज के इन कार्यों का विस्तार है।

सेवा सम्बन्धी—वेदव्यास आश्रम, रउरकेला जैसे ब्रह्मचर्य आश्रमों, आर्य वानप्रस्थाश्रमों, साधनाश्रमों, सन्यास आश्रमों शुद्धि-सभाओं, अनाथालयों,विधवाश्रमों, गौशालाओं, हिन्दी प्रचार संस्थानों चिकित्सालयों, संस्कृत प्रचार परिषदों, आर्यवीर दलों और व्यायाम शालाओं आदि अनेक संगठनों का संचालन आर्यसमाज करता है।

स्वदेशी, स्वभाषा, स्वदेश और स्वतन्त्रता के प्रति स्वाभिमान के भाव आर्यसमाज जगाता है। 'सादा जीवन उच्च विचार' उसकी कार्य पद्धति का आदर्श है। अपने गौरवमय अतीत को वर्तमान करना ही जैसे उसके कार्यकलापों की आत्मा है। इसी स्वप्न को साकार करने के लिये देश विदेशों में ४००० शाखा और प्रशाखाओं सहित आर्यसमाज रूपी यह परोपकार का महा कल्पवृक्ष खड़ा है, जिसकी शीतल छाँह हताश मानवता के लिये दैवी वरदान है।

वैदिक दिग्विजय का पथ प्रशस्त हो रहा है।

दिनेश–भैयाजी, अब सिर्फ इतनी जानकारी और चाहूँगा कि क्या आर्यसमाज के इन बलिदानों और प्रखर तपस्या का कुछ सुफल भी निकला है ?

सुरेश–प्रिय दिनेश जी ! प्रथम तो सत्कर्म कर्त्तव्य बुद्धि से ही करने चाहिए। वह अपने आप में सबसे बड़ा सुफल है। किन्तु किसी कर्म या विकर्म का फल तो अवश्यम्भावी है। आर्यसमाज के इन सेवा साधनों ने निश्चय ही वैदिक दिग्विजय का मार्ग प्रशस्त किया है। आर्यसमाज की विचार सरणि के दो पक्ष हैं—१. सुधार पक्ष २. सिद्धान्त पक्ष। सुधार पक्ष तो प्रायः आर्यसमाज का सभी को स्वीकार हो चुका है। नारी-शिक्षा, विधवा विवाह, दलितोद्धार, छूत-छात-निषेध, शुद्धि-सङ्गठन आदि कौन,है जो आज इनका विरोध करने का साहस करे ? (छूत-छात का समर्थन करने पर पिछले दिनों श्री

शंकराचार्य जी को लेने के देने पड़ गये थे) इतना ही नहीं आज हिन्दू विश्व परिषद्, हिन्दू महासभा, रा० स्व० से० सङ्घ आदि के द्वारा इनका खुला समर्थन हो रहा है। वृद्ध विवाह, बाल विवाह, देवदासी प्रथा, वेश्यागमन, मृतक भोज आदि कुरीतियाँ अपनी मौत मर चुकी हैं।

सिद्धान्त पक्ष में भी वैदिक सत्य सिद्धान्तों का लोहा हृदय से तो सभी मान चुके हैं। आर्यसमाज के तो अपने कोई नये सिद्धान्त हैं ही नहीं। वैदिक सत्य सनातन सिद्धान्त ही आर्यसमाज के सिद्धान्त हैं। वैदिक त्रैतवाद (ईश्वर जीव और प्रकृति-इन तीनों की अनादि सत्ता) को व्यवहारत: अब सभी मान रहे हैं। पुनर्जन्म की घटनाओं ने सूर्य प्रकाशवत् इसे सिद्ध कर दिया है। वैदिक सिद्धान्त है— ईश्वर निराकार है। पौराणिक भाई कहते हैं—साकार भी है। तो निराकार से तो निषेध करते ही नहीं, अर्थात् आर्यसमाज का पक्ष तो सिद्ध कोटि का है। पौराणिक पक्ष साकार भी है साध्य कोटि का हुआ, श्रीराम कृष्ण आदि हमारे महान् पूर्वज थे यह तो पौराणिक भी मानते हैं वे ईश्वर थे यह साध्य कोटि में है। माता पिता, विद्वान् ब्राह्मण, सच्चे सन्त और सत्याचरण तीर्थ हैं यह वैदिक पक्ष तो सभी को मान्य ही है। हरिद्वार, मथुरा काशी आदि स्नान या गङ्गा यमुना का जल तीर्थ है, इसे उनको सिद्ध करना है। गङ्गाजल रोग निवारक और स्वास्थ्यवर्द्धक है, यह तो सभी को स्वीकार है। उसमें नहाने से या केवल गङ्गा-गङ्गा कहने से जन्म-जन्मान्तरों के पाप का फल नष्ट हो जाता है या मृतक की हड्डियाँ गङ्गा जल में बहाने से उसका मोक्ष हो जाता है यह साध्य कोटि में है। जीवित माता-पिता और गुरुजनों की श्रद्धा पूर्वक सेवा और उनको तृप्ति ही सच्चा श्राद्ध और तर्पण है। आयसमाज का यह पक्ष तो सभी को मान्य है पर मरने के बाद उसके नाम पर किसी नामधारी पंडित को कराया हुआ भोजन पार्सल होकर उनके पास पहुँच जाता है यह साध्य कोटि में है, जिसका सिद्ध होना शेष है। ईश्वर एक और सर्वव्यापक है, यह तो सभी स्वीकारते हैं। ईश्वर बहुत सारे भी हैं, वे आपस में लड़ते भी

रहते हैं, उनके रहने के अलग-अलग निवास स्थान हैं, नौकर चाकर स्त्री-पुरुष आदि हैं, यह सब सिद्ध होना शेष है।

तो वैदिक सिद्धान्त तो सार्वभौम और सार्वकालिक होने से स्वय सिद्ध और सभी को मान्य ही हैं। कल्पित मान्यताओंके दुर्ग भी वैदिक तोपों की मार से ढह रहे हैं। मूर्ति की पूजा को जगह 'मूर्ति में ईश्वर की पूजा' कहा जाने लगा है। मृतक श्राद्ध को बुजुर्गों का स्मृति दिवस कहकर सन्तोष किया जा रहा है। यद्यपि सत्य की कसौटी पर यह सब भी तार-तार हो जाता है। पुराण, कुरान और बाइबिल आदि को गप्पों को अलङ्कार कहकर उनकी नूतन बुद्धिवादी व्याख्यायें भी प्रस्तुत करने का यत्न हो रहा है। इधर विज्ञान के बढ़ते हुए चरण इन मत-मतान्तरों के लिए महाकाल सिद्ध हो रहे हैं। श्री कृष्ण ने गोवर्धन पहाड़ को उँगली पर उठा लिया, हनुमान बन्दर थे। और उन्होंने सूर्य को गाल में दे लिया, मुहम्मद साहब ने चाँद के दो टुकड़े कर दिये, ईसा अपनी मृत्यु से चौथे दिन कब्र से जीवित उठ बैठे आदि चमत्कारवाद की इस सारी पच्चीकारी को विज्ञान ने धूलिसात करके रख दिया है। स्पष्ट है वैदिक दिग्विजय का मार्ग प्रशस्त हो रहा है।

दिनेश–पर साथ ही राधा स्वामी मत, ब्रह्माकुमारी मत, हँसा मत, बहाई मत, आनन्द मार्ग, और जय गुरुदेव आदि अनेकों नये मत पन्थ भी तो बड़े वेग से बढ़ रहे हैं।

सुरेश–प्रियवर ! इसका बड़ा कारण वेद, यज्ञ और योग के आधार पर आर्यसमाज द्वारा रचनात्मक कार्यक्रम का अभाव ही है। अति भौतिकता से संत्रस्त मानव की आत्मा को उसकी खुराक न मिलने से जब वह भूख से छटपटाती है तो कहीं न कहीं पर वह तृप्ति खोजने का यत्न करती है। पुरानी दुकानों के छल कपट का भंडाफोड़ होने से चूंकि नई पीढ़ी को उनसे घृणा है और मानव की आत्मिक क्षुधा वह तो स्वाभाविक ही है। ऐसी दशा में कुछ चतुर लोगों ने योग और अध्यात्म के नाम पर इन नई दुकानों को सजाया है।

आर्यसमाज के आन्दोलन के पश्चात् जन्मे इन मत पन्थों ने पुरानी शराब को नई बोतल में नये लेबल के साथ देना आरम्भ किया है. कुछ सुधार के कार्यक्रम और मानवता एवं राष्ट्रियता के स्वर भी साथ लिए हैं। पर मूल में घोर गुरुडम और अन्ध-विश्वास यहाँ भी और कई गुना पलता है। लोग आकर्षक नारों, नये लेबलों और सजी-संवारी दुकानों पर मोहित हो अध्यात्म और योग के नाम पर जहर गले उतारे रहे हैं। परिणाम भी सामने है। 'बहिन जी' और 'भयाजी' के परिवेश में ऐन्द्रिक वासना तृप्ति के रूप में ब्रह्म दर्शन का जो नाटक यहाँ होता है उस पर लज्जा भी लजा जाती है।

नये मत पन्थ बनाम चाट भण्डार

आज चाट भंडारों की बाढ़ है। युवा युवती घर का सात्विक भोजन न करके बाजार में खड़े २ चाट खाते हैं और इस तरह अपनी भूख मिटाने का उपक्रम करते हैं। सात्विक भोजन जो सच्चा स्वास्थ्य देता है, उनको पसन्द नहीं। खूब चटपटा भोजन और चाट उनको प्रिय है। परिणाम में इस राक्षसी 'चाट' ने हमारी नई पीढ़ी का स्वास्थ्य ही चाट डाला है। वे रोगी होते हैं। शीघ्र आरोग्य लाभ के विषले इन्जेक्शन लगवाते हैं। और इससे भी अधिक लम्बी और स्थायी बीमारी के शिकार होकर असमय में मृत्यु के मेहमान बनते हैं। ईश्वरीय कृपा से प्राकृतिक जीवन पद्धति अथवा प्राकृतिक चिकित्सा से जिनका परिचय और प्यार हो जाता है वे ही सच्चा आरोग्य लाभ कर जीवन का आनन्द लेते हैं।

अध्यात्म के नाम पर भी लोगों को 'चाट' प्रिय है। रास-विलास प्रिय है। इसलिए आज सैकड़ों कृष्णावतार खड़े हो गये हैं। (रामावतार नहीं !)इन चाट भंडारों पर सब प्रकार के मिर्च-मसाले युक्त लीलायें चलती हैं और अध्यात्म की भूख की तृप्ति के नाटक किये जाते हैं. मिनिटों में परमात्म-दर्शन के इन्जेक्शन दिये जाते हैं, इन नई फैन्सी दुकानों पर ! युवक और युवतियाँ फँसते हैं, शिकार होते हैं, विनष्ट होते हैं। ईश-कृपा से जिनको वैदिक सत्सङ्ग मिलता है अथवा पूर्व जन्म के सुसंस्कारों से जिनको वैदिक अध्यात्म के सरल

प्राकृतिक स्वरूप से परिचय होता है, वही आध्यात्मिक आरोग्य लाभ करते हैं और वही उससे प्राप्त शक्ति-भक्ति द्वारा प्रभु की इस विश्व वाटिका की सेवा साधना एवं माँ मानवता की अर्चना द्वारा जीवन-मोक्ष लाभ करते हैं। उनको मत-मतान्तरों की जीवन नाशक यह बाजारू चाट तनिक भी प्रिय नहीं होती।

यह ठीक है कि अज्ञान की काली रात्रि शेष है और ये नये मत पन्थ बढ़ते हुए दीखते हैं। पर निराशा का कोई कारण नहीं है बन्धु! मानवात्मा सत्य की भूखी है। अन्ततः सत्य प्राप्ति द्वारा ही उसकी तृप्ति होगी। पुराने मत पन्थों की भांति बहुत शीघ्र ही इन नये मत पन्थों के गुरुओं के माया-जाल से मुक्त होकर मानव सत्य स्वरूप परमात्मा की शरण में ही शान्ति लाभ करेगा और राष्ट्रकवि गुप्त जी के शब्दों में वह कह उठेगा—

'पाकर तुम्हें फिर और कुछ पाना न रहता शेष है।
पाता न जब तक जीव तुमको भटकता सविशेष है।
जो जन तुम्हारे पद-कमल के असल मधु को जानते।
वे मुक्ति की भी कर अनिच्छा तुच्छ उसको मानते॥

आओ, बन्धु ! हम उसकी शरण में आयें। वेद माता के शब्दों में—'भद्रं हि शम त्रिवरूथ मस्ति' (त्रिवरूथ) ईश्वर, जीव और प्रकृति–इन तीनों में उस ईश्वर की शरण ही शान्तिदायक और सर्व कल्याण-कारिणी है।

रमेश—धन्य-धन्य मित्रवर ! मैं अपने कृतज्ञता के भावों को शब्दों का चोला पहिना सकूं, यह सम्भव नहीं है। आपने तो हमें मानव जीवन की धन्यता का ही रहस्य बताकर सत्यदर्शन की राह पर खड़ा कर दिया है। मैं आपका चिर कृतज्ञ रहूँगा।

दिनेश—पूज्य भैया जी ! मैं यों आर्यसमाज के विषय में पहले भी समझता था, पर आपने जो इतने संक्षेप में उसका सत्य और सरल रूप प्रस्तुत किया है, उससे मेरी सम्पूर्ण भ्रान्तियाँ निश्शेष हो गई हैं।

अब मैं निश्चय ही परम पवित्र वैदिक मिशन का एक निष्ठावान् भक्त बन गया हूँ।

: ६ :

मानव निर्माण की वैदिक प्रक्रिया

रमेश का छोटा भाई भी महेश इस 'मित्र वार्ता' में सम्मिलित हो गया था। वह सुरेश के समाधानों से अत्यधिक प्रभावित हुआ था। वह अब तक मौन था। वार्ता को समाप्ति की दशा में जाते देखकर विनीत भाव से बोला--

भैयाजी ! आपके द्वारा दिनेश की शङ्काओं के इस सुन्दर समाधान के बीच ही कुछ प्रश्न मेरे मन में उभर आये हैं। क्या आप अनुमति देंगे ?

सुरेश–(घड़ी की ओर देखते हुए) प्रिय महेश जी ! समय तो अधिक हो रहा है। फिर भी आप अवश्य पूछें अति संक्षेप में ही सही उत्तर देने का यत्न करूंगा।

महेश–भ्राताजी ! आपने आर्य समाज को मानव निर्माण आन्दोलन या चरित्र निर्माण आन्दोलन बताया है। पर उसका विधायक कार्यक्रम या निर्माण की प्रक्रिया क्या है ?

सुरेश–सामूहिक रूप से मानव निर्माण के साधनों पर तो हम विचार कर ही चुके हैं, पर आपका आशय व्यक्तिगत निर्माण से है। और यहाँ मैं आपसे पूरी तरह सहमत हूँ कि व्यक्ति-व्यक्ति के निर्माण से ही परिवार निर्माण, परिवार निर्माण से ही समाज निर्माण और उसी से विश्व निर्माण होगा।

(१) **सत्सङ्ग**---व्यक्ति निर्माण की इस प्रक्रिया में पहला साधन है--सत्संग। मित्र ! पता नहीं जन्म-जन्मान्तर में किन-किन योनियों में होते हुए यह मानव शरीर हमने पाया है। स्वभावतः ही विगत जन्मों के पशुत्व के संस्कार मानव मन में जमे होते हैं। सच्चा मानव

बनने के लिए आवश्यकता इस बात की होती है कि पशुत्व के संस्कार धूमिल या नष्ट हों और उनके स्थान पर देवत्व के संस्कार जगें, इसके लिए आवश्यक है—वैदिक विचारों या वैदिक विद्वानों का सत्सङ्ग। दूसरे शब्दों में हम पशुत्व को सहारा देने वाले अवैदिक मत पन्थों के कुसङ्ग से बचें और वैदिक सत्सङ्ग का कोई भी अवसर (कष्ट और हानि उठाकर भी) न चूकें।

(२) **स्वाध्याय**—(सु + अध्ययन) उत्तम ग्रन्थों का पठन-पाठन सत्सङ्ग का सर्वोत्तम साधन स्वाध्याय है। वेदों का पढ़ना और पढ़ाना तो 'परम धर्म' कहा है। नित्य ही पवित्र वेदों का कम से कम एक मन्त्र अर्थ सहित पढ़कर उस पर मनन और आचरण का अभ्यास करना चाहिए। वैदिक दर्शन, उपनिषद् तथा वेदानुकूल अन्य ऋषि ग्रन्थों के स्वाध्याय द्वारा आज भी हम उन शास्त्र प्रणेता ऋषियों का सत्सङ्ग लाभ कर सकते हैं। इससे ऋषि ऋण भी चुकता है। गन्दे उपन्यासों आदि का प्रतिज्ञा पूर्वक सर्वथा त्याग भी इसी का अङ्ग है।

(३) **आत्म निरीक्षण**—स्वाध्याय का और उत्तम अर्थ है—(स्व + अध्ययन) अपने को पढ़ना। सदैव विचारें कि मैं आत्मा हूँ। मेरा लक्ष्य प्रकृति के साधन द्वारा परमात्मा की प्राप्ति है। प्रतिक्षण अपने लक्ष्य, अपने कर्त्तव्य का विचार। शरीर, मन, बुद्धि और आत्मा के संयोग का नाम यह जीवन है। शरीर अर्थात् इन्द्रिय समूह या इन्द्रियों की स्वस्थता (नीरोगता) और पवित्रता—निश्चितदिनचर्या, सात्विक और ऋतु अनुकूल पथ्य भोजन, उचित निद्रा, उचित श्रम और व्यायाम द्वारा प्राप्त करना। प्राणायाम द्वारा मनका संयम और बुद्धि की पवित्रता तथा परमात्मा के ध्यान से आत्मिक शुद्धता की प्राप्ति, आत्म निरीक्षण पूर्वक दिनचर्या (डायरी) लेखन जीवन निर्माण में परम सहायक है। यह कार्य रात्रि को सोने से पूर्व करें।

(४) **ईश्वर भक्ति**—चरित्र निर्माण या मानवता प्राप्ति का अमोघ साधन है प्रभु-भक्ति। उस देवाधिदेव का सत्सङ्ग ही हमको समस्त दुर्गुणों से बचाकर हमारे सोये हुए देवत्व को जगायेगा। उक्त

आत्म-निरीक्षण हम प्रातः सायं अपने श्रेष्ठतम सखा, अपने प्रियतम पिता की गोद में बैठकर ही करें। एक-एक इन्द्रिय का निरीक्षण-परीक्षण करें। अपने दाता को हिसाब दें सिनेमा के देखने या गन्दे गीत न सुनने का व्रत लें और भद्र दर्शन एवं भद्र श्रवण द्वारा अपने आत्मस्थदेव का प्यार प्राप्त करें। ※

ईश्वर का प्यार पाने के लिए हमें एक तो ईश्वर की प्रजा को प्यार करना होगा। दूसरे निष्पाप और सरल बनना होगा। जिसको तिकड़म, चालाकी और मक्कारी का भरोसा न होकर एकमेव उस प्रभु की कृपा और न्याय में विश्वास है वही ईश्वर भक्त है, वही ईश्वर पुत्र है और वही 'आर्यः ईश्वर पुत्रः' के अनुसार आर्य कहलाने का अधिकारी है। यह 'ब्रह्म-यज्ञ' मानव निर्माण की अमोघ प्रक्रिया है वैदिक सन्ध्या या ब्रह्मयज्ञ में–यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा ध्यान और समाधि–इस अष्टांग योग विधि का समावेश है। × मानव निर्माण के यह आठ श्रेष्ठतम सोपान हैं।

(५) यज्ञमय जीवन एवं वर्ण धर्म का पालन—'यज्ञ' का अर्थ बिना किसी बदले की भावना के दूसरों को भलाई अथवा परोपकार है, यज्ञमय जीवन का अर्थ है—परोपकार–परायण या समर्पित जीवन। यज्ञ की आत्मा है–'**इदं न मम**' जो मेरे पास है वह मेरा नहीं है–मेरे भगवान् का है, भगवान की प्रजा का है, सम्पूर्ण समाज

※ संसारी राजा की तरह जिन मतवादियों ने ईश्वर का एकदेशीय मानकर ईसा मूसा मुहम्मद या हनुमान आदि देवी देवताओं के रूप में उसके दरबार में भी वकील और सिफ़ारिशी मान रखे हैं, जो समझते हैं कि ईश्वर के बहुत बार नाम लेने से वह खुशामदियों की तरह पाप क्षमा कर देता है या उसके नाम पर भोग-प्रसाद या बकरा-भैंसा चढ़ाने से पाप का फल नहीं मिलाता। वे भोले ईश्वर का नाम भी लेते रहते हैं और अधिक-धिक पाप करके घोर पापी भी बने रहते हैं। उन्हें ईश्वर कृपा का लाभ नहीं मिल पाता।

× अधिक परिचय के लिए पं० चमूपति जी कृत 'सन्ध्या रहस्य' पढ़े।

का है (१) मेरे पास ईश-कृपा से प्राप्त उत्तम विचारों या सद्ज्ञान की पूंजी है। 'इदं न मम'--यह मेरी ही नहीं है, मेरे समस्त समाज की है। मैं अपने को यज्ञ-समिधा की भाँति आहुति करके (तिल-तिल जला कर) भी अपने समाज को प्रकाश दूंगा। 'अज्ञान का नाश' मेरा जीवन व्रत है (२) मेरे पास बल है है 'इदं न मम'---वह मेरा नहीं है, मेरे समाज का है। मैं यज्ञ-शाकल्य की भांति स्वय मिटकर भी समाज से 'अन्याय की दुर्गन्धि को मिटाऊंगा। न्यायाचरण की सुगन्धि फैलाऊंगा (३) मेरे पास धन है 'इदं न मम'—वह मेरा नहीं, मेरे समाज का है राष्ट्र का है यज्ञ के घृत की भाँति मैं स्वयं को जलाकर बादल बन कर बरसूंगा और सारी धरती को 'अभाव' मुक्त कर धन धा य से पूर्ण कर दूंगा। (४) पर मेरे पास तो न विद्या है न बल और न धन। तो क्या मैं समाज सेवा नहो कर सकूंगा ? मैं ज्ञान (विद्या) के प्रतिनिधि ब्राह्मण, बल के प्रतिनिधि क्षत्रिय, धन के प्रतिनिधि वैश्य का सहयोगी बन उनके कतव्य सम्पादन में सहायक बन राष्ट्र का पाँव (आधार) बनकर राष्ट्र को खड़ा रखूंगा। अज्ञान, अन्याय और अभाव किसी भी राष्ट्र के ये तीन महाशत्रु हैं। इनके निवारण के लिए व्रत में दीक्षित होकर समाज के लिए अर्पित जीवन यज्ञमय जीवन है।

यह वर्णव्यवस्था ही व्यवहारिक और सच्ची ईश्वर भक्ति है। यही यज्ञोपवीत का रहस्य है। यही वैदिक साम्यवाद या समाजवाद है—जिसमें व्यक्ति के आत्म-विकास का अधिकार भी सुरक्षित है तथा उसका सर्वस्व स्वेच्छया समाज रूप यज्ञ भगवान के अर्पित है। नित्य प्रति कि ये जाने वाला 'देवयज्ञ' उसी यज्ञमय जीवन का प्रतीक रूप है। केवल देवयज्ञ कर लेना और यज्ञमय जीवन न बनाना अधिक लाभदायक नहीं। उससे 'वायु शुद्धि, शुद्ध जल वृष्टि आदि भौतिक लाभ तो होंगे पर राष्ट्र जीवन को शक्ति नहीं मिल सकेगी। पितृयज्ञ अतिथि यज्ञ तथा बलिवैश्वदेवयज्ञ भी मानव निर्माण के महत्वपूर्ण सोपान और राष्ट्र जीवन के आधार होने से नित्यकरणीय हैं। ❀

❀ यज्ञ रहस्य जानने को पं० बुद्धदेव जी कृत 'पञ्चमहायज्ञ प्रकाश या श्री 'प्रेम जी कृत नित्यकर्म विधि: पढ़ें।

(६) **आश्रम-व्यवस्था** [मानव निर्माण की शत वर्षीय योजना] वैदिक धर्म में मनुष्य के सम्पूर्ण (सौ वर्षीय जीवन) को (१) ब्रह्मचर्य (२) गृहस्थ (३) वानप्रस्थ और (४) सन्यास आश्रम के कर्त्तव्य कर्मों से सजाया गया है। इसमें क्रमशः अपने प्रति, परिवार के प्रति, समाज (राष्ट्र) के प्रति और प्राणिमात्र के प्रति विविध कर्त्तव्यों (धर्मों) का समावेश हो जाता है।

(७) **वैदिक संस्कार**—मानवात्मा को सुसंस्कृत करने के लिए गर्भाधान (बालक के गर्भ में आने) से लेकर अत्येष्टि (मृत्यु) पर्यन्त वैदिक धर्म में १६ संस्कारों का विधान है। एक-एक सस्कार जीवन के चरम लक्ष्य की प्राप्ति की दिशा में एक-एक भव्य सोपान है। × आयोजनों द्वारा भी पवित्र ऋग्वेद की—'मनुर्भव जनयादैव्यंजनम्।' (मनुष्य तू मनुष्य बन और देवों—श्रेष्ठ मानवों का निर्माण कर) —इस आज्ञा के पालन में बड़ा बल मिलता है। संक्षेप में यही है आर्य समाज की मानव निर्माण प्रक्रिया।

वैदिक साम्यवाद बनाम कम्यूनिज्म

महेश—-भ्राताजी ! मैं अत्यधिक उपकृत हूँ। एक निवेदन है कि आपने अभी वैदिक साम्यवाद की चर्चा की थी। तो क्या आर्य-समाज समाजवाद या साम्यवाद का पोषक है ? या फिर रूसी समाजवाद (कम्यूनिज्म) और वैदिक साम्यवाद में कुछ अन्तर है ?

सुरेश–प्रियवर, उत्तर अधिक समय और विस्तार चाहता है, पर वहुत थोड़े में समझो कि वैदिक धर्म या मानव धर्म की सबसे बड़ी शिक्षा ही यह है--ईश्वर एक है। वह सारे ससार के सब प्राणियों का पिता है। हम सभी मनुष्य और मनुष्येतर जीवधारी भी उस एक पिता की सन्तान होने से भाई-भाई हैं। वेद माता की व्यवस्था है---

× वैदिक संस्कारों के रहस्य परिचय के लिए संस्कार 'चन्द्रिका' दोनों भाग पढ़िये। —सत्य प्रकाशन मथुरा।

'अज्येष्ठासो अकनिष्ठासो संभ्रातरो वावृधुः' न कोई बड़ा है, न छोटा है, सब भाई-भाई हैं और सब समान हैं। कर्म करने में स्वतंत्र होने से उनके चिन्तन करने और कर्म करने में भिन्नता है। कर्म की यह भिन्नता, कर्म फल की भिन्नता या विषमता को जन्म देती है। एक ही माता पिता को दो सन्तानें भी समान नहीं होती हैं ? शारीरिक गठन, बल, विद्या, बुद्धि सभी में विषमता होती है।

तो कर्म फल की व्यवस्था के आधीन कुछ विषमतायें स्वाभाविक हैं। उनको मिटाया नहीं जा सकता। पर उनके रहते हुए भी यदि मानव केवल अपने लिए ही नहीं, दूसरों के लिये भी जीना सीखले तो वह विषमता भगवान की सृष्टि का अभिशाप न रहकर वरदान बन जाये, विषमता की इस स्थिति में ही तो मानव को देव बनाने वाली दया, दान, प्रेम करुणा और परोपकार वृत्ति या यज्ञ-भावना जन्म लेती है। 'केवलाघो भवति केवलादी' अकेला ही खाने वाला पापी है, समाज का शत्रु है। वह अनार्य है, दस्यु है। उसे आर्य बनाकर यज्ञ-भावना से दीक्षित करो। हममें से प्रत्येक सच्चा ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य या शूद्र बनकर अपने जीवन (अपनी सम्पूर्ण क्षमताओं ज्ञान, बल, अर्थ और सेवा शक्ति) का ही स्वेच्छया राष्ट्रियकरण कर दे—अपने जीवन को यज्ञमय बना ले।

पर हाय रे दुर्भाग्य ! मानव तो सत्य धर्म के रहस्य को न जानकर कर्म फल से उत्पन्न स्वाभाविक विषमता को घटाने के स्थान पर और बढ़ाता है और कई बार तो यह धर्म का नाम लेकर बढ़ाता है। एक मनुष्य के कुत्ते दूध से मुँह फेर लें और पड़ौसी का बालक दूध की एक बूँद के लिए तरस-तरस कर प्राण त्याग दे। यह इतनी बड़ी विषमता मानव की सामाजिक दुर्व्यवस्था का परिणाम है। और यह सर्वथा असह्य है। यह विषमता मिटनी ही चाहिए। इसके दो ही साधन हैं—

(१) एक वह जिसे कम्यूनिज्म प्रस्तुत करता है—मानव

की हिंसा वृत्ति को उभारकर मारो काटो, छीनो, झपटो की दुहाई देकर वर्ग संघर्ष को उत्पन्न करके । (२) दूसरा है वैदिक प्रकार— मनुष्य की सोई हुई सत्य धर्म वृत्ति या यज्ञ-भावना को जगाकर दया, दान, प्रेम, करुणा और मनुष्य क्या पशु-पक्षी तक में भी 'आत्मवत् सर्वभूतेषु' की भावना जगाकर संसार को स्वर्ग बनानां। पह ी स्थिति में बाहर की समानता किसी प्रकार प्राप्त भी करली जावे (जो पूर्णतया तो सर्वथा असम्भव है।) पर वहाँ आन्तरिक विषमता रूप असन्तोष रहेगा। दूसरी स्थिति में बाहर की स्वाभाविक विषमताओं के बीच में भी आन्तरिक रूप से समान सन्तोष है। यहाँ फल रूप सन्तोष में समानता है। और भी अन्तर देखिये—

(१) कम्यूनिस्टों का धर्म और ईश्वर से विरोध है, पर निश्चय ही यह धर्म और ईश्वर के सच्चे स्वरूप के अज्ञान के कारण है। आखिर कार्लमार्क्स अथवा कोई भी कम्यूनिस्ट जब किसी मजदूर की दयनीय दशा से द्रवित होता है तो उसके अन्तर में भी दया, प्रेम और करुणा का ही तो उदय हुआ। यही तो धर्मभावना या यज्ञभावना है। काश कि कार्लमार्क्स इसी प्रेम और कल्याण को जन-जन में जगा पाते तो इस धरती का मनुष्य चन्द्रमा की उड़ान लेकर भी सर्वनाश के कगार पर खड़ा न होता ! हाँ, विविध मत-पन्थों के बादलों ने सत्य धर्म के सूर्य को ढक लिया है, उसका निराकरण अनिवार्य है। ऋषि दयानन्द ने यही किया। इस प्रकार ऋषि दयानन्द और महात्मा कार्लमार्क्स की मूल भावना—सृष्टि के सभी प्राणियों का सुख एक होते हुए भी मार्ग सर्वथा भिन्न और परिणाम सवथा विपरीत है।

(२) कम्यूनिज्म सिर्फ अर्थ ओर काम पर केन्द्रित है, वैदिक साम्यवाद अर्थ और काम का अन्य मत-पन्थों की भाँति हेय तो नहीं मानता किन्तु उन्हें धर्म से नियन्त्रित कर मोक्ष का साधन बनाता है।

(३) कम्यूनिज्म का 'स्वर्ण-सिद्धान्त' (According to ones capacity, according to one's need) धर्म-भावना या कर्त्तव्य बुद्धि के अभाव में कम से कम क्षमता योग्यता के उपयोग और

अधिक से अधिक आवश्यकताओं को वृद्धि के रूप में सर्वथा असफल हो चुका है। 'Need' 'Greed' में बदल गई है। 'यज्ञोपवीत-दीक्षा' द्वारा स्वेच्छया ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य या शूद्र के रूप में राष्ट्र को अधिक से अधिक क्षमता (Capacity) का दान और कम से कम आवश्यकतायें रखना या "सबकी उन्नति में अपनी उन्नति मानना" (आर्य समाज का नवां नियम) ही उसका श्रेष्ठतम समाधान है।

(४) पूँजीवाद कहता है किसी को भी छेड़ो नहीं, कम्यूनिज्म कहता है किसी पर भी छोड़ो नहीं। वैदिक साम्यवाद कहता है–यथा-योग्य व्यवहार करो। (आर्य समाज का सातवां नियम) याज्ञिक को, आर्य को [सम्पत्ति और शक्तियों की राष्ट्र-यज्ञ में हवि देने वाले को] छेड़ो नहीं किन्तु असुर(अपने लिये ही जीने वाले) पर क्षत्रिय के दण्ड का उपयोग कर छोड़ो नहीं। यह है वैदिक 'यथायोग्यवाद'।

(५) कम्यूनिज्म में व्यक्ति की स्वतन्त्रता का गला घोंट दिया गया है, पूँजीवाद (अमेरिका) में व्यक्ति को आत्यन्तिक स्वतन्त्रता है। वैदिक साम्यवाद में—'सामाजिक सर्वहितकारी नियमों में परतन्त्रता तथा व्यक्तिगत हितकारी नियमों में स्वतन्त्रता (आर्य समाज का दसवां नियम) का स्वर्णिम सिद्धान्त है।

एक व्यक्ति अपने पूर्ण पुरुषार्थ से विद्या बल और धन को अर्जित करता है और 'इदं न मम' का पाठ करता हुआ उसे राष्ट्र देवता के अर्पित कर देता है यही है सच्चा राष्ट्रीयकरण या वैदिक साम्यवाद। यही है विश्व-शान्ति का सुपरीक्षित सूत्र,जिसका मूलाधार है सच्ची आस्तिकता या सबका आदि मूल—परमेश्वर ! (आर्यसमाज का प्रथम नियम)।

धर्म और राजनीति पर्याय हैं।

महेश–भ्राताजी ! अत्यधिक सन्तोष हुआ। बस एक प्रश्न और! आर्यसमाज का तब क्या राजनीति से भी कोई सम्बन्ध है ?

सुरेश--प्यारे महेश जी ! आर्यसमाज के निकट राजनीति

और धर्म दो वस्तुएँ हैं ही नहीं। यह भ्रान्ति भी मत-पन्थों द्वारा उत्पन्न की गई है कि धर्म का सम्बन्ध सिर्फ परलोक, मोक्ष और अध्यात्म से है। और राजनीति का लोक या अर्थ काम से। पर वैदिक धर्म मानव जीवन की सफलता—धर्म, अर्थ काम, मोक्ष इस फल चतुष्टय को प्राप्ति में मानता है। 'ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या' या लङ्गड़ी (एकाङ्गी) अहिंसा, पलायनवाद, भक्ति के नाम पर दैन्यता और कर्तव्य-शून्यता का प्रचार करने वाले सबसे बड़े राष्ट्रद्रोही हैं। इस पोववाद ने हजार साल तक देश को गुलाम बनाये रखा।

दर्शनकार के अनुसार–**'यतोऽभ्युदय निश्रेयस सिद्धिःस धर्मः'** जिससे लोक और परलोक दोनों की ही प्राप्ति हो वह धर्म है। राजनीति को ऋषि दयानन्द ने 'राजधर्म' लिखा है। वह धर्म का विशिष्ट अङ्ग है। बिना धर्म के राजनीति अन्धी है और बिना राजनोति के धर्म लङ्गड़ा है। दोनों का समन्वय करो। अन्धे के कन्धे पर लङ्गड़े को बिठाओ। तभी ये दोनों मिलकर संसार में व्याप्त अशान्ति की लपटों से विश्व मानव को बचा सकेंगे। पृथक्-पृथक् दोनों ही अपूर्ण हैं। महर्षि ने इसी विचार से सत्यार्थ प्रकाश का छठा समुल्लास लिखा। स्थान २ पर राजधर्म और स्वाधीनता की भावना को प्रस्तुत किया।

आर्य समाज का तो सम्पूर्ण कार्यक्रम—उसकी सन्ध्या, उपासना यज्ञ-याग, सम्पूर्ण कर्मकाण्ड और सम्पूर्ण सुधार आन्दोलन राष्ट्र-निर्माण का कार्यक्रम है। अतः वैदिक धर्म तो जहाँ मानव धर्म है, वहाँ राष्ट्र-धर्म भी है। यही कारण है कि राष्ट्रिय आन्दोलन में प्रत्येक आर्यसमाजी स्वातन्त्र्य सेना का सर्वोत्तम सैनिक था।

आर्यसमाज के कार्यक्रम को जितने अंशों में राष्ट्र ने अपनाया उतने अंशों में पूर्ण और जितने अंशों में नहीं अपनाया उतने अंशों में अपूर्ण – क्षत-विक्षत, टूटी-फूटी—स्वतन्त्रता हमें मिली। धर्म निरपेक्ष राजनीति की बातें करने वाले न धर्म को समझते हैं, न राजनीति को। अन्यथा धर्म की निरपेक्षता की दुहाई देकर वे "सत्यमेव जयते" को अपना आदर्श (मोटो) कैसे मान सकते थे? खेद यही है कि पन्थाईपन

पोपवाद या कोरे पूजा पाठ को ही आम लोगों ने धर्म मान रखा है। पर हम भूलते हैं कि सन्ध्योपासना, यज्ञ आदि यह सब तो धर्म का शरीर मात्र है, धर्म की आत्मा है इन्सानियत, मानवता, राष्ट्रियता, यज्ञमय जीवन और व्यावहारिक या विवेकपूर्ण (वर्णाश्रम धर्म युक्त) आस्तिकता।

रमेश दिनेश और महेश तीनों बोल उठे—बन्धुवर, सुरेशजी ! आर्यसमाज के सरल परिचय के रूप में आपने हमारी सम्पूण शङ्काओं को निर्मूल कर हमें व्यक्ति-कल्याण, परिवार-कल्याण, राष्ट्र-कल्याण और विश्व-कल्याण का जो सत्य सनातन भूला हुआ 'वेदपथ' दिखाया है आपके इस महान् ऋण से हम कैसे अनृण हो सकेंगे ?

सुरेश—भाइयो ! यह मेरा नहीं, देव दयानन्द का ऋण है। न केवल आप पर, न केवल मुझ पर वरन् मानव मात्र पर ही ऋषि के अमित उपकार हैं। उससे हम यत्किञ्चित् अनृण हो सकें इसका एक-मेव उपाय यही है कि हम अपने जीवन और आचरण द्वारा वैदिक धर्म और आर्यसमाज का स्वरूप प्रस्तुत कर संसार के भ्रान्त मानव की रक्षा करें। मनुष्यता से युक्त 'मानव' आज के संसार और भारत का सबसे बड़ा अकाल है। बन्धु! ईश्वर हमें शक्ति-भक्ति दें ताकि हम इस अभाव की पूर्ति में सहायक हो सकें।

प्रिय मित्र ! आपको विदित होगा कि धर्म के सत्य स्वरूप से अप-रिचित होने व धर्मध्वजियों की काली करतूतोंसे निराश नई पीढ़ी एक प्रकार से पथभ्रष्ट हो रही है। उसकी रक्षा के लिए आओ हम चारों साथी मिलकर अज्ञान-नाश का व्रत लें। विश्वास करो बन्धु ! शीघ्र ही विश्व-मानव भौतिकता और आध्यात्मिकता, लोक और परलोक, धर्म और राजनीति, भाग्य और पुरुषार्थ, श्रद्धा और बिवेक,ज्ञान और कर्म, कर्म और भक्ति तथा व्यष्टि और समष्टि से समन्वित वैदिक मध्यम मार्ग की शरण लेगा। और तब एक स्वर में संसार कहेगा—

जो आचारे सो अभय : वैदिक धर्म की जय !!

वैदिक प्रेस, मथुरा।

मूल्य--१--४०

Rs 1 . . 0